श्री हिन्दी जैन कार्यालयपुस्तक मालाका पुष्प ४ था

॥ अनुभव पंचविंशति ॥

गुजरातीमें मूल लेखक, योगनिष्ठ मुनि श्री
बुद्धिसागरजी

प्रकाशक—कस्तूरचंद ज गादिया.
संपादक "हिन्दी जैन"
मुंबई नं ?.

प्रथम वार १००० प्रति. सन् १९१२

अहमदावाद सत्यविजय प्रेसालयमें शा सांकलचंद
हरिलाल द्वारा छपी

मूल्य—फी पुस्तक १० आने।

प्रस्तावना.

भव्य जीव आत्म स्वरूपका बोध करते है, उस समय उपादेय शुद्ध साध्यबिंदु आत्मा है। एव शुद्ध भावनाद्वारा स्वीकार करके जन्म, जरा, मृत्युके असह्य दु खोंका नाश करनेके लिये और परमानद स्वादार्थ आत्माभिमुख होकर यथाशक्ति ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रयीका देशत. अथवा सर्वत आराधन भव्य जीव करते है। आत्माके ज्ञानके लिये आत्मज्ञानी भव्य जीवोंको उपदेश देते है पुस्तक लिखकर-रचकर सर्व साधारणके लाभार्थ छपवाते है, तथा पत्र लिखकर उनोंके आत्म हितार्थ प्रयत्न करते है। वर्तमान, भूत तथा भविष्य काल-यह तीना कालमें इस प्रकारकी प्रवृत्ति हो रही है। तद्वत् इस ग्रथका उद्देश समजना चाहिये।

उक्त प्रकारका तथा ओरभी अनेक लाभ जैनी जन प्राप्त करें इस हेतुसे एक तो " हिन्दी जैन " नामक साप्ताहिक पत्र आज कितनेक समयसे हमारी ओरसे प्रगट हो ही रहा है। अलावा यह ग्रथमालाभी कितनेक वक्त पहेले शुरु करी थी, जिसके आजतक ३ पुष्प प्रकट करके वाचक सज्जनोंके कर कम लमें दे चूके हैं, और उसी ग्रथमालाका यह ४ था पुष्पभी अर्पण करते हमें हर्ष होता है।

आत्म ज्ञाता मनुष्य यह तो भली भांति जानते हैकि, आत्म प्रदेशकी झांखी जहांतक हृदय प्रदेशमें प्रकाशित नहीं होती वहां तक संसारके प्रपंचोंमेंसे छूटना अति कष्ट साध्य है। और उसके अभावमें जन्म, जरा, और मरणरूप त्रिपुटीका जो महान् दुःख है निवर्त नहीं होता। जहांतक यह हालत है वहांतक मुक्ति सदैव दूरही रहती है।

सारे संसार के मनुष्य पुत्र, स्त्री, मित्र, पिता, घर, द्वार, हाट, बखार इत्यादि अनेक प्रकारकी प्रपंच जालमें फँसे हैं। मैं और मेरा-अर्थात् अहं, मम-यह भावना सदैव हृदयमें जाग्रत रहा करती है। इन शब्दोंके प्रथम न कार अर्थात् नाऽहं और न मम अहं सच्चिदानंद स्वरूप यह भावना होनेकी आवश्यकता है। यह भावना हृदय प्रदेशमें जाग्रत होती है, अत एव मोक्ष स्थान अति निकटही है, यह बात संदेह रहित है। अऽहं और ममकी भावनाको दूर करनेमें न आवे तो केवल चार अंगुल निकटका प्रदेशभी चर्मचक्षुस नहीं दिखाई देता। दृष्टांत ये समज लीजिये कि नेत्रद्वारा कान दिखाई नहीं देते।

इस ग्रंथमें विशेषतः यह बातही प्रतिपादन करनेमें आई है। इस ग्रंथके गुजराती रचयिता योगनिष्ठ श्रीमान् मुनि बुद्धिसागर-जी हैं। अतःएव अवश्यमेव आत्म प्रभाको प्रकाश करनेके उपाय वे बतावें यह स्वाभाविक है। योगनिष्ठ पुरुषोंके बचन सदैव आत्म प्रदेशोंकोही विशेष करके प्रतिपादन करते रहते हैं.-पुष्टि

देते रहते है। यह बात वांचक वृंद इस पुस्तकको पढना आरंभ करतेही मालूम हो जायगी।

अनुभव पचविंशति नामक इस ग्रंथमें मंगलाचरणके बाद गुरुका स्वरूप बतानेमें आया है। फिर आत्म स्वरूपकी व्याख्याको लक्ष्य बिन्दु बनाकर कितनाक विवेचन किया है। कर्म और आत्माका संवाद पृष्ठ ८९ से शुरू होता है, फिर आठ पक्षसे सिद्धका स्वरूप प्रतिपादन किया है। चार निक्षेपोंका स्वरूप तथा मूर्तिपूजाकी मान्यताका उद्देश युक्तिद्वारा और सप्रमाण बताया है। आत्मा और शुद्ध चैतन्यका संवाद है। ज्ञान पूर्वक ध्यान करनेकी स्थिति बताई है। ज्ञानीकी महत्वताके विषयमें संयम बत्तीसीकी गवाह दी है। और चंद्राविजय पयन्ना नामक सूत्रका प्रमाण दिया है। पृष्ठ १४६ से दश प्रकारके मिथ्यात्व हैं उनोंका वर्णन है। मिथ्यात्वका वर्णन करते संक्षेपसे सात निन्हवोंकाभी चटकीला ऐतिहासिक वर्णन किया है। स्याद्वाद स्वरूपका रहस्य, सम्यग् दृष्टि जीवको मिथ्या शास्त्रभी सम्यक्त्व रूप होते हैं उसपर नंदि सूत्रमेंसे साक्षी, मुक्तिरूप महलम चढनेक लिये पदरह पाउडीयां बताई है वे विशेषत मनन करने योग्य है। आत्माकी उपादय (ग्रहण कर) ता विशेष प्रकारसे समजाकर ग्रंथकी समाप्ति कर दी है।

जय श्री हिन्दी साहित्यकी

हिंदी जैन कार्यालय
वैशाखी पौणिमा.

प्रकाशक.

निवेदन.

शब्द शास्त्र अपार है, जिसका किसी समय अन्त नहीं आयगा। पाणिनी मुनि ने पाणिनी अर्थात् सिद्धांत कौमुदी नामक व्याकरण बताया, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचद्राचार्यने ' सिद्ध हैम ' व्याकरण लिखा, इसही प्रकार कात्यायन, शाकटायन बुद्धिसागर, शाकल्य आदिने व्याकरण लिखे हैं, तथापि शब्द शास्त्रका तो उनने भी पार नहीं पाया। तो मेरी क्या बात करू !

आज कल कई हिन्दी ज्ञाता महानुभावोंके परिचयमें आनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। कई महाशयोंको लेख और गुजराती भाषामें से हिन्दीमें किया हुआ अनुवाद बताया गया, तब उन महाशयोंने झट यह कह देनेकी कृपा फरमाई कि इसमें गुजराती शब्दोंका अधिक उपयोग किया है। इस बारेमें मुझे लिखना पडता है कि, अधिक गुजराती शब्द इस पुस्तकमें है या नहीं इसकी परीक्षा तो पाठक ही कर लेंगे, तथापि यह और कहे बिना नहीं रहा जाता कि " भारत वर्षमें अनेक भाषाए विद्यमान हैं। कितनीक तो एक दुसरीसे परस्पर अति निकट सबंध रखती है कितनीक थोडा। तो भी एक भाषामें दूसरी भाषाके शब्द अधिक बर्ते जाँय, समाज बर्त रहा हो, तो उक्त महाशयोंका आक्षेप अस्थानीय है। वैसे सज्जनों को यह निवेदन करता हूँ कि वे महाशय बगाली और सस्कृत, हिन्दी और उर्दू, उर्दू और गुरुमुखी, गुजराती और हिन्दी इन सब भाषाओंमें परस्पर बर्तते हुए व्यवहारिक शब्दोंकी ओर लक्ष्य देवें कि एक भाषाके कितने शब्द कितनी भाषाओंमे बर्ते जाते हैं। एकही शब्द अनेक भाषामें बर्ता जाता है। इस बातकी ओर ध्यान देना जरूरी

है। गुजराती भाषामें हिन्दीके और संस्कृत के इतने शब्द वर्ते जाते हैं कि उनोंकी संख्या एक नहीं किन्तु अनेक है। और वे विना बाधाके वर्ते जाते हैं। अत एव कह देना कि इसमें गुजराती शब्द अधिक है, यह तो ठीक नहीं होता। फिरतो मुंडे मुंडे मति र्भिन्ना इस न्यायानुसार असंतोषके स्थानपर संतोष धारण करना ही योग्य समझा है।

अपने में पारिभाषिक अर्थात् व्यवहारमें जो शब्द नहा वर्ते जाते उनोंकी संख्या इतनी है कि यदि वे सबके सब लिखें जावे तो एक ओर ही नया अमर कोष बन जाय। यदि उन पारिभाषिक शब्दोंका अर्थ समजमें न आ सके तो सद्गुरू द्वारा या अधिक ज्ञाता हो उससे समझ लेंवें। यदि वे योग नहोतो हमें लिखेंगे तो उसका यथामति उत्तर देनेमें बिलकुल गलती नहोगी। सज्जनोंका सेवक

वैशाखी पौर्णिमा } उदयचंद लालचंद शाह
अनुवादक

तय्यार है! तय्यार है।

शुद्ध देव अनुभव विचार

श्रीमान परम पुज्य स्वर्गीय चिदानन्दजी महाराज रचित " शुद्धदेव अनुभव विचार " नामकी पुस्तक जिसको पढनेके लिये कई श्रावक भाई अत्यन्त उत्तसुक थे हिन्दी भाषामें छपकर तय्यार है। इस पुस्तकमें उक्त मुनिराजने अध्यात्मीक ज्ञानके द्वारा शुद्धदेवका अनुभव बताया जिसके पढनेसे एक उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है। इस पुस्तकके छपनेके पूर्वेही ५०० कापीस अधिकके तो ग्राहक हो चुके हैं शेष ५०० से भी न्यून है इस लिये शीघ्र ग्राहक हो जाइयेगा नहीं तो पछताना पडेगा पुस्त-

मूल्य सर्व साधारणस ६ आने पोस्ट खर्च अलग

यतो धर्मस्ततो जय

श्री भोज ट्रेडिंग कम्पनी.

महाशयो ! बम्बई शहर में "श्री भोज ट्रेडिंग कम्पनी" स्थापित की गई है। इस कम्पनी द्वारा सर्व प्रकारकी वस्तुए जैसे कागज कलम, श्याही, पुस्तकें, बटियें, दवाइयें, कपडे और मनोरंजन करनेकी चीजें बाजा आदि बडे लाभ के साथ मँगानेवाले सज्जनों के पास भेजी जाती है। हम अपने मुँह से क्या तारीफ करें जब आप एक वक्त इस कम्पनी के द्वारा माल मँगावेंगे तो खुद आपहीको अपने मुँहसे प्रशन्सा करना पडेगी और जब कभी आप को किसी चीज की आवश्यकता होगी आप इसी कम्पनी को आर्डर देंगे। एक वक्त माल मँगाइये, अनुभव कीजिये और बाद में यदि हमारी ओर स आप को किसी प्रकार का धोखा हो तो हमें लिखिये, हम आप को दुगने दाम वापिस देंगे। योतो आपने अनेक कम्पनियों से माल मगाया होगा और अनेक कम्पनियोंने आपको माल अच्छा और टिकाऊ भेजा भी होगा; किन्तु अब इस कम्पनी से भी मँगवाकर देखें। हमारा लिखना कहा तक सत्य है, इस बातका अनुभव कर। विशेष क्या लिखें ज्यादः लिखने से शायद हम भी कहीं झूठों की गिनती में शुमार किये जावें क्यों कि आजकल लम्बे चोडे विज्ञापनों से लोगों काचित्त हटा हुआ है। इस लिये इतना ही बस। आपसे केवल अब आर्डर पानेकी ही आशा रखते हैं।

हमारा पता,

"श्री भोज ट्रेडिंग कम्पनी." बम्बई

जैन बुक डीपो

हमने जन भाइयोंके लाभार्थ तमाम जैनकी पुस्तकें और हर प्रकारका सामान सपलाय करने वास्ते यह डिपो खोला है। और ऐसी व्यवस्थाकी है कि हरएक चीज और पुस्तक हिफा जतके साथ और फायदेसे ग्राहकोंको घर बेठे बिठाये मिलजावे। एक वक्त कोईभी वस्तु मगाकर हमारे डिपोसे आपको लाभ है, या हानि इसका अनुभव तो कर लीजीये. हमारे यहा सर्व सामान व पुस्तकें मिलेगा

" आगम अष्टोत्तरी-भाषातर "

हिन्दी भाषाम छपकर तय्यारहै । सत्वर ग्राहकोंम नाम लिखवाइये थोडे दाममें उत्तम आध और आनदृदायक पुस्तक मिलेगी त्वरा कीजीये । मौका न चुकें नहीं तो पछताना पडेगा। जो महाशय "हिन्दी जैन" के ग्राहक है उनसे पुस्तकका मूल्य तीन आने ही लिये जायेंगे औरोंसे चार आने । डाक खर्च अलग

सू०—आठ आनेसे कमकी वी० पी० न होगी । यदि कम मगाना होतो पुस्तककी कीमत और पोस्ट खर्च के टिकट भेजना चाहिये

सर्व प्रकारकी पुस्तकोंके मिलनेका पता —

और दाम भजना या पत्रव्योहार करना हो तो नीचे के पते पर करो हिन्दी जैन कार्यालय

(जैन बुक डिपो) हाथी बिल्डिंग बम्बइ न २

॥ श्री शान्तिनाथाय नमः ॥

॥ अनुभव पंचविंशति प्रारंभ ॥

दुहा.

त्रेविसमा श्री पार्श्वनाथ, संखेश्वर सुखकार ॥
तेह तणा चरणे नमी, वळी सद्गुरु हितकार ॥१॥
प्रणमी भगवती सरस्वति, जिन वाणी जयकार ॥
अनुभव पच्चीसी रचुं, जेथी शिव सुख सार ॥२॥

दुहा.

उत्तम धर्म थकी सुणो, एवी जिनवर वाण ॥
धर्म २ जग सौ करे, सत्यधर्म जिन आण ॥१॥

भावार्थः-उत्तम पुरुष धर्माराधनसे जानना। परन्तु ससार में निमग्न रहे, गाडी घोडे उपर बैठे, उसको उत्तम कहना यह बाल जीवोंका लक्षण है। कहा है किः-

न धम्म कज्जा परमथ्थि कज्जं ।
न पाणिहिंसा परम अकज्जं ॥
न पेमरागा परमथ्थि बंधो ।

न बोहिलाभा परमध्यि लभि ॥ २ ॥

भावार्थ -धर्मकृत्यसे अन्य कोई उत्तम कार्य नहीं है। सबब कि, जब मनुष्य मरे तब स्वजन, प्यारे, पुत्र, पुत्री, स्त्री, धन, राज्य, ऋद्धि आदि कोई साथ नहीं आता। केवल मरनेवाले के साथ पुण्य और पाप जाता है, पुण्यभी धर्म कहलाता है, परभवमें जाते मात्र धर्म सुखदायक है। परन्तु इस ससार मे अपने दिनभर जिसके लिये परिश्रम करते हैं, वह जड वस्तुरूप लक्ष्मी साथ नहीं आती। केवल मोहसे अपने वह परवस्तुको अपनी जानते है; परन्तु वह साथ आनेवाली नहीं है। परभव प्रयाण करते धर्म सहायकारक होगा। कोई जीव संसारमें स्त्रीसे सुख मानता है, कोइ पुत्रसे सुख मानता है, कोइ धनसे सुख मानता है, परन्तु जो उत्तम पुरुष हैं, धर्मसे सुख मानते है।

आर्यदेशमे जन्म होना, श्रावक कुल अवतार, पचेंद्रिय सपूर्णता, देवगुरुकी जोगवाई, उसमेंभी बोधिबीजकी प्राप्ति पुण्यसे प्राप्त होती है। जिस जीवने परभवमे धर्म साधन नहीं किया है, वे इस भवमें दुःखी दिखाइ देता है, और जिस जीवने परभवमें धर्म साधन किया है, वह सुखी मालुम होता है। राज्य पाना यहभी एक पौद्गलिक सुखका कारण है। वास्ते उसके ओर लक्ष न देते मुक्ति सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करना चाहिये। मुक्ति सुखके समान अन्य सुख नहीं है। श्रावक

धर्म-साधु धर्मका पालन करना यह मुक्तिके लिये है। और मुक्तिभी विना धर्माराधनके नहीं मिल सकती। वास्ते धर्मका आराधन करना चाहिये। कहा है किः-

श्लोक.

अपि लभ्यते सुराज्यं लभ्यन्ते पुरवराणि रम्याणि॥
नहि लभ्यते विशुद्धः सर्वज्ञोक्तो महाधर्मः ॥१॥

भावार्थः-राज्यभी सुखसे पा सक्ते है, मनोहर ऐसे नगरभी पा सकते है, परन्तु विशेष करके शुद्ध सर्वज्ञ महाराजने कहा हुआ धर्म पाना दुष्कर है। कहा है किः—

श्लोक.

छिन्न मूलो यथावृक्षो, गतशीर्षो यथाभटः ॥
धर्म हीनो धनी तद्वत्, कियत्काल ललिष्यति॥१॥
धर्मः कल्पद्रुमो लोके, धर्म श्चिंतामणि नृणां ॥
धर्मःकामदुघा धेनुः, धर्मः श्चिवाक्षयोनिधि ॥२॥

भावार्थः-जिसके मूल नष्ट हुए हैं, ऐसा वृक्ष चिरकाल पर्यंत नहीं निभ सकता, और मस्तक कटा हुआ सुभट-योद्धा जैसे अधिक समय नहीं रह सकता, वैसे धर्म करके हीन धनवान्भी कहो कितना समय सुख भोग सकेगा ? इस संसारमें धर्म कल्पवृक्ष समान है। कल्पवृक्षके पास जो जो वस्तु मागे वह दे

जो स्त्री खूबसूरत दिखाई देती है, वेही वृद्धा अगर रोगी होनेसे उसके उपर अरूचि उत्पन्न होती है। तो क्षणिक सुखका भ्रम उत्पन्न करानेवाली स्त्री उपर मोह धारण न करना। मरते समय अपनी साथ स्त्री नहीं आसक्ती। कितनीक स्त्रीया अपने पतिको भी मार डालती है। स्त्रीभी एक जीव है। वास्ते ये दृश्य स्त्री उपरसे मोह त्याग करके मुक्ति स्त्री मिलाने प्रयत्न करना चाहिये। मुक्ति रूप स्त्रीका संग अनंत सुखको देगा।

मुक्तिरूप स्त्री धर्म करनेसे प्राप्त होती है। वास्ते प्रत्येक जीवोंनें धर्मसाधन करने प्रयत्न करना चाहिये। कहा है कि:-

गाथा

विहडंति सूया विहडंति बधवा।
विहडइ सुसंचिओ अथो।
पुण इक्को न विहडई
विहिणा आराहिओ धम्मो ॥ १ ॥

भावार्थ.— पुत्र भी नष्ट होते है, और भली प्रकार रक्षण करके इकट्ठा किया हुआ धनभी नष्ट होता है, परन्तु विधि पूर्वक आराधन किया हुआ एक धर्म नहीं नष्ट नहीं होता।

मित्रों! विचारो कि धर्म २ ये शब्दका व्यवहार करतेहैं परन्तु सत्य धर्म तो जिनेश्वर कथित जानना।

प्रश्नः—जिनेश्वर भगवानने कहा हुआ वहही धर्म सत्य जानना और अन्य सत्य नहीं, अतःएव आप कैसे कहते हैं?

उत्तरः—जिनेश्वर भगवान् सर्वज्ञ होते हैं। तीन भुवनमें रहे हुए पदार्थोंको सपूर्ण रीतिसे जान सक्ते हैं, और उस मुताबिक पदार्थोंका स्वरूप प्रकाशा है। अतःएव हम कहते हैं कि, जिनेश्वर भगवान् कथित धर्म सत्य है। जिसमें राग द्वेष नहीं उसे जिन कहते हैं। अनंत ज्ञान सहित और राग द्वेष रहित होनेसे उनोंको असत्य बोलनेका प्रयोजन नहीं है। जिनेश्वर भगवतने समवसरणमें बैठकर नवतत्त्व प्रकाशे हैं। उनोंके नामः—

जीवाऽजीवा पुण्णं पावासव संवरोय निज्जरणा॥
बंधो मुखोय तहा नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥१॥

१ जीव तत्त्व २ अजीव तत्त्व ३ पुण्य तत्त्व ४ पाप तत्त्व ५ आश्रव तत्त्व ६ संवर तत्त्व ७ निर्जरा तत्त्व ८ बंध तत्त्व ९ मोक्ष तत्त्व। ये नव तत्त्व प्रकाशे हैं। दशम तत्त्व कोई मालुम नहीं होता।

जीव अनंत हैं और वे चार गतिमें भटका करते हैं। जीवको चार गतिमें भटकनेका कारण कर्म है। कर्म दो प्रकारका है। १ शुभ कर्म २ अशुभ कर्म। शुभ कर्मसे राज्य ऋद्धि, पुत्र, परिवार, मनुष्य गति, देवताकी गति इत्यादि प्राप्त हो सके। भव्य जीवोंको सापेक्ष बुद्धिसे पुण्य कर्म

मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करनेमें सहायकारी होता है। पाप कर्मसे दुःख मिलता है, और जब शुभाऽशुभ कर्मका नाश होता है, तब आत्मा मुक्तिपद पाता है। एव तीर्थंकर महाराजने भव्य जनोंके हितार्थ नवतत्त्वका स्वरुप बताया है। जीवकी मुक्ति जिससे होती है, उसको धर्म कहनेमें आता है। जिनेश्वर भगवान कथित तत्त्वोंको सूक्ष्म बुद्धिसे विचारते सत्य मालुम पडते हैं। वास्ते उनोंका कथित धर्म सत्य है। अन्यवादीओंने एकान्तपने और अज्ञानसे तत्त्व प्ररूपे है, असत्य है, इसका विशेष स्वरुप स्याद्वादमंजरी, नंदीसूत्र और सूयगडाग सूत्रादिसे जानना।

दुहा.

द्रव्य भाव दो भेदसे, धर्म कहे जिनराय ॥
भावधर्म वह आतमा, सेवो भवि सुखदाय ॥१॥

भावार्थ —जिनेश्वर भगवानने द्रव्य और भाव दो भेदसे धर्म कहा है। भाव धर्मका तो कारण उसको द्रव्य धर्म कहते है। बिना द्रव्य धर्म के भाव धर्मकी सिद्धि नहीं होती। जिनेश्वर भगवानकी पूजा करना, वैयावच्च (सेवा चाकरी) करना, नवकारसी करना, दान देना, परमात्माकी प्रतिमा बनवाना इत्यादि, जिससे आत्मा निर्मल होता है उसे द्रव्य धर्म कहते है। और आत्मामें रहे हुए ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुणोकी

प्राप्ति उसको भाव धर्म कहते हैं। बिना द्रव्य धर्मके जो भाव धर्मकी आराधना करता है, वह बिना गेंहु और गुडके लड्डु बांधनेवाले जानना। वास्ते द्रव्य धर्म और भाव धर्मका अनुक्रमसे आराधन करना वे हितकारक है। पुण्यकी करणी करना वहभी द्रव्य धर्म है। पुण्यसे उत्तम कुलमें अवतार मिलता है, और देवगुरू धर्मकी जोगवाई मिल सक्ती है। वास्ते सापेक्ष बुद्धिसे पुण्यकी करणीभी हितकारक है। ऐसा मानना चाहिये। जब बडे पुण्यका उदय होता है, तब मनुष्य जन्म पा सकते हैं। मनुष्य जन्म पानेमें पुण्य कारण जानना। परन्तु आलम्बन कहना पडेगा कि, पाप आतप समान है, और पुण्य छायासमान है। मुख्य अभिलाषा तो मोक्ष पानेकी रखना चाहिये, परन्तु पुण्यकी चाहना न रखना!

जैसे किसान बाजरी बोता है, तब बाजरी आनेकी आशा करता है, परन्तु घासतो बाजरी पकते स्वाभाविक उत्पन्न होता है। बाजरीका सिट्टा होनेके प्रथम सांठा तैयार होता है, और उसपर सिट्टा आता है, और वे पके तब बाजरी निकलती है। यदि बाजरीका सांठा न हो तो सिट्टाभी न हो और बाजरीभी न निकले। जैसे बाजरीका सांठा सि ट्टाके प्रत्ये कारण है, वैसे द्रव्यधर्म भावधर्म प्रत्ये कारण है। द्रव्य धर्मके सिवाय भाव-धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह उक्त दृष्टांतसे समजना। द्रव्य धर्म और भावधर्मका स्वरूप गुरुमुखसे सुन कर उसकी श्रद्धा करके धर्मसाधन करना उसमें हित है।

दुहा.

द्रव्य धर्म ते भावनु, कारण जाणे एम॥
व्यवहार निश्चय भेदथी, धर्म कह्यो वळी तेम ॥३॥

भावार्थ—द्रव्य धर्म वह भाव धर्मका कारण है, जैसे घीका दूध और मक्खन है। पुनः जैसे पुत्र पुत्रीके उत्पत्तिका कारण है, वैसे द्रव्य धर्म वह भाव धर्मका मुख्य कारण है।

फिर जिनेश्वर भगवतने धर्मके दो प्रकार कथन किये हैं। १ व्यवहार धर्म २ निश्चय धर्म। व्यवहार नयकी अपेक्षासे जिसको धर्म कहनेमें आता है, वे व्यवहार धर्म जानना, और निश्चय नयकी अपेक्षासे जिसको धर्म कहनेमें आता है, वहको निश्चय धर्म जानना।

दुहा.

शुद्धाशुद्ध दुभेदथी, धर्म मर्म जीव जाण ॥
पुण्य करणी ते शुभ धर्म सापेक्ष बुद्धि आण ॥४॥

भावार्थ फिर धर्मके दो प्रकार हैं। १ शुद्धधर्म २ अशुद्ध धर्म। जिनेश्वर भगवान कथित साधु और श्रावकका धर्म वह शुद्ध धर्म जानना। अथवा आत्माका स्व स्वभाव वे शुद्ध धर्म जानना।

श्री तीर्थंकर महाराजने श्रावकके लिये समकित मूल १२

व्रत प्रकाशे हैं, और यति साधुके लिये पंच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन विरमणव्रत, प्रकाशे है। पुण्य करणीभी सापेक्ष बुद्धिसे देखते मोक्ष प्राप्तिमें कारणभूत है। अतः एकांतता न पकडना। संवर करणी उपादेय (आदरणीय) है, जिससे आत्माको लगते कर्म रुकते है, उसको संवर करते हैं।

दुहा.

द्रव्य क्षेत्रने काल भाव, योगे धर्म सधाय ॥
निमित्त सेवो शुद्ध जेम, कर्म कलंक कटाय ॥५॥

भावार्थः—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके योगसे धर्म साधा जा सक्ता है। हे भव्य जनो! शुद्ध निमित्तको सेवो कि, जिससे आत्माको लगा हुआ कर्म कलंक दूर हो जाय। सुज्ञो! स्मरण रखो कि, अच्छे निमित्तके योगसे आत्मा धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्या सक्ता है। साम्प्रत समयमें शुक्लध्यानका विरह है; तो भी धर्मध्यान तो है। सत्संगत करना ए धर्म साधन करनेमें उत्तम कारण है। जिसके संगसे आत्मा आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानमें पडे, वैसे निमित्तका त्याग करना चाहिये। जैसे २ निमित्त मिलते है वैसाही आत्मा बन जाता है। जैसे पाषाणको सूर्यका आतप लगते पाषाण उष्ण हो जाता है, और रात्रिके समयमें शीतकालमें पालेके पुद्गलोंका संयोग होते पाषाण ठंडा हो जाता है। ५ आत्माको

वैरागीकी सगति होनेसे आत्मा वैरागी होता है, और आत्माको मिथ्यात्वीकी सगत होनेसे मिथ्यात्वी हो जाता है। इसी कारणसे तीर्थंकर महाराजने आज्ञा की है कि, अन्यदर्शनीका विशेष परिचय न करना। क्योंकि जैसी सोबत वैसी असर होती है, वास्ते कर्म बढनेके कारणोका त्याग करके कर्म नष्ट हो, वैसे मिलाना चाहिये। वारवार सद्गुरुकी वाणीका श्रवण करना, वैराग्यजनक पुस्तकें वाचना, जिससे समकितकी श्रद्धा हो वैसे पुस्तक वाचना, और जिससे आत्मा शांति पामे वैसे पुरुषकी सगति करना चाहिये। अच्छा शरीर हो तो भली प्रकार धर्मसाधन हो सकता है; वह भी एक निमित्त है। आत्मार्थी जीवोने विशेष करके स्त्रीके संगका त्याग करना चाहिये, और आत्माका हित हो वैसी प्रवृत्ति करना चाहिये।

सत्सगम जो पामिये, प्रगटे पुण्य पसाय ॥
कारणे कारण नीपजे, वादळने जेम वाय ॥ ६ ॥

बडे पुण्यके योगसे सत्समागम होता है। सत्समागम होते आत्माके मूळ स्वभावका ज्ञान होता है, और आत्मा जानता है कि, अहो! मैने इतना समय अज्ञान दशामें गँवाया। मैं परवस्तुमें सुखकी भ्रान्ति करता हूँ, परन्तु परवस्तु जो पुद्गल वे मेरा नहीं है। यह पुद्गलद्रव्यसे मैं पृथक् हूँ। पुद्गल जड वस्तु है, उसकी सगत करनेसे मै चौरासी लक्षजीवायोनिमें महारौरव दुःख भोगता हुआ भटकता हूँ। ये पुद्गल

द्रव्यकी सगति करना ठीक नहीं । चांदी, सोना, हीरा, मोती, कर्म ये सर्व पुद्गल द्रव्यसे भिन्न है । आत्मा अरुपी है और पुद्गल द्रव्य रुपी है । तो रुपी द्रव्यके साथ अरुपी जो आत्मा उसकी सगत करना योग्य नही है । पुद्गल द्रव्यकी आत्मा से भिन्न जाती है । और यह पुद्गल द्रव्य आत्माके शत्रु समान है, वास्ते शत्रुभूत पुद्गल द्रव्यकी संगत कौन सुज्ञ मनुष्य धारे, और शत्रुभूत पुद्गल द्रव्यके साथ प्रीति करते दुःख पाना यह निश्चित है । जहां शत्रुभूत पुद्गलको अपना मानने में आता है, तत्पर्यंत मुक्ति सुखकी आशा न रखना । जो भव्य जीव इस संसारको असार गिनते हैं, और मुक्तिपदको सार मानके वे प्राप्त करने प्रयत्न करते है उनोंको धन्य है। आत्मा अनंत सुखका भोक्ता है । परन्तु पुद्गल द्रव्यकी सगति करनेसे आत्माको चौरासी लक्षजीवायोनिमें भ्रमण करना पडता है, और महा भयंकर दुःख सहन करना पडता है । इस लिये हे भव्यजीवो ! तुम परकी सगति मत करो, और स्वतः में रहे हुए ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुणोंकी सगति करो । स्वस्वभावमें रमण करना येही हितकारक है । बहुत भव्य जीव स्वस्वभावमें रमण करके मुक्ति पद पाये हैं और फिर पॉयगे, तथा महाविदेह क्षेत्रमे पाते हैं । वास्ते सुज्ञोने याद रखना कि, सत्सगम अत्यत हितकारक है । इस पर श्री आनदघनजी महाराज कहते हैं कि. जिसको

शाति स्वरुप पाना है, उसने इस अनुसार वर्तना ।

शुद्ध आलंबन आदरे, तजी अवर जजालरे ॥
तामसी वृत्ति सवि परिहरी, भजे सात्त्विकी शालरे ॥५॥
दुष्ट जन सगति परिहरी, भजे सुगुरु सतानरे ॥
जोग सामर्थ्य चित्त भावजे, धरे मुगति निदानरे ॥६॥

इत्यादि वाक्य सत्सगम करने प्रेरणा करते हैं, और दुष्ट जन सगतिका त्याग करना कहते हैं। परन्तु जैसा जीवका भाग्योदय होता है, वैसी सगति मिलती है। बावा, खाखी, जोगी, सन्यासी, पादरी दुढकादिक कि, जो वीतरागके वचन विरुद्ध उपदेश देते हैं, उनोंकी सगति न करना। नाटक प्रेक्षणादिसे आत्मा परभाव में रमण करके पापराशि सपादन करता है, वास्ते वे न देखना। विशेष क्या आत्मस्वभावसे पर पुद्गल स्वभाव उसमें रमण वह पर सगति है। इस ससारमें इस नेत्रोंसे जो वस्तु दिखाई देती है, वे पुद्गल वस्तु हैं, उसकी सगति करना आत्माको अयोग्य है। सबब कि, जैसी सगति करें वैसा फल पावें। जडकी सगत करेतो जडपना पावें वास्ते पुद्गल द्रव्यकी सगति न करना इसमें सार है। व्यभिचारका त्याग करना चाहिये। जो लोग मिथ्यात्वी हो उसकी सगति न करना।

॥ दुहा ॥

अग्नि पासे तापतां, तापज लागे जेम ॥
सद्गुरु वाणी सुणतां, अनुभव जागे तेम ॥७॥

भावार्थः-जैसे अग्नि पास तापते अपने शरीरको उष्णता लगती है। वैसे सद्गुरु वाणी सुनने आत्म स्वरूपका अनुभव जागृत होता है, सद्गुरु महाराजकी वाणी श्रवण करते मालुम होता है कि, ये आत्मा अनादि कालसे कर्म सयोगसे चतुर्गति रुप ससारमें भटकता है, और महा रौर दुःख पाता है। वास्ते वह ससारमें न भटके वैसा करना चाहिये। आश्रवकी करणी करनेसे ससारमें पडता है, और सवरकी करणी करनेसे मोक्ष सुख मिलता है। इस शरीरमें आत्मा व्यापक है और वह शरीरसे भिन्न है। आत्माका लक्षण शुद्ध चैतन्य है। जैसे मोक्षमें परमात्मा निर्मल है, वैसा अपना अपना आत्माभी निर्मल है, परन्तु अभी कर्मसे कलंकित हुआ है। आत्मा नित्य और अनित्य है। एकांतसे आत्मा नित्य मानतेभी मिथ्यात्व लग सकता है।

कितनेक लोग ऐसा मानते हैं कि, जीवोंको बनानेवाला परमेश्वर है, वह मानना व्यर्थ है।

यदि जीवोंको बनानेवाला परमेश्वर कहा जाय तो इश्वरको बडा कलंक लगे और इश्वरत्व नष्ट हो जाय। प्रथम तो

हम यह पूछते हैं कि, जीवोंको बनानेका ईश्वरको क्या प्रयोजन था ? क्या जीवोंको बिना बनाये ईश्वरको चैन न पड़ता था ? और जब जीव न थे तब ईश्वर क्या करता था ? ये उभय पक्षमेंसे एकका भी उत्तर न दे सकोगे। फिर यदि जीवोंको ईश्वरने बनाये ऐसा तुम कहोगे तो हम पूछते हैं कि, ईश्वर रूपी है या अरूपी ? यदि रूपी कहोगे तो कर्मकलंकित हुआ। सबब कि, बिना पुद्गल द्रव्यके रूपीपना नहीं घट सक्ता, और यदि ईश्वरको अरूपी मानोगे तो अरूपी ऐसा जो ईश्वर उससे किस प्रकार शरीरधारी रूपी जीवकी उत्पत्ति हो सके ? उत्तरमें कहोगे कि कुछ नहीं। तब जीवोंको बनानेवाला भी कोई नहीं, ऐसा हम कहते हैं। जीवोंको ईश्वरने बनाये ऐसा माननेमें कुछ भी प्रमाण नहीं है।

यह दुनिया अनादि कालसे है।
दुनियाको बनानेवाला कोई नहीं।
जीवोंको बनानेवाला कोई नहीं।
कर्म अनादि कालसे जीवके साथ लगा है।
जीवोंको सुख दुःख ईश्वर नहीं दे सकता।

कर्मसे जीव दुःख पाता है, और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है।

आत्म स्वरूप जाने बिना औरको नहीं कहा जा सकता। जो जानता है वेही जानता है। वास्ते आत्म स्वरूप जानने-

का विशेष करके प्रयत्न करना। कोई मतवादी ऐसा कहता है कि, आत्मा मस्तकमें रहता है, कोई मतवादी ऐसा कहता है कि, आत्मा नाभीमें नव कमलकी पाखडी है, वहा रहता है, कोई ऐसा कहता है कि, आत्मा सर्व जीवोंका एक है, एवं मतवादीयोंका अज्ञान दशासे मानना वह झूठ है।

कितनेक ऐसा कहते हैं कि, आत्माकी परमात्मावस्था अर्थात् परमेश्वर समान अवस्था नहीं होती, ऐसा जो वादी कहता है, वह भी झूठ है। आत्मा कर्म रहित होनेसे परमात्मा अर्थात् परमेश्वर हो सकता है। आत्माका स्वरूप स्याद्वाद रीतिसे गुरुगमद्वारा जानना, जानने पश्चात् आश्रवका त्याग करना। कहा है कि, "ज्ञानस्य फलं विरतिः" आत्म स्वरूपका ज्ञान होने बाद व्रत, पच्चख्खाण, चौदह नियम धारना, पंच महाव्रत धारण करना, श्रावकके बारह व्रत धारण करना, सामायिक–प्रतिक्रमण करना, प्रभु पूजा करना इत्यादि विरति भी प्राप्त होती है, और विरतिका फल निर्जरा है, और कर्मकी निर्जरा होके, आत्मा कर्म कलंक रहित होकर मोक्षगतिको पाता है। वास्ते आत्मस्वरूप पहिचानने प्रयत्न करना।

प्रश्नः—ज्ञानसेही मोक्ष हो तो फिर क्रिया करनेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तरः–"ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रियासे मोक्ष है। परन्तु केवल ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती। ज्ञानसे नवतत्त्व,

सातनय, सप्तभंगी, षड्द्रव्य, चार निक्षेपादि जाने, निगोद, नरक, तिर्यंच, देवताके भेद तथा उनोंका स्वरूप जाने, मोक्ष स्वरूप जाने, आत्मा कर्मसे दु खी होता है, ऐसा जाने, और कर्मका नाश संवरसे है, परन्तु संवरकी करणी न करे और आश्रवका सेवन करे तो, मुक्ति किस प्रकार हो ? अलबत्ता नहीं हो। ज्ञानसे आश्रवको शत्रुभूत मानकर छोडे, और व्रत, पञ्चक्खाण, सामायिक व्रत आदि धर्मक्रिया करे, ज्ञानाभ्यास करे तो कर्मका नाश हो सकता है। परतु अकेले ज्ञानसे मुक्ति होना दुर्लभ है। जैसे-कोई मनुष्य जानता है कि, अहमदाबादसे पालीताने यात्रा करने जाना हो तो अमुक रास्ते होकर जानेसे पहुचते है, ऐसा आप जानता है, मगर चलनेका प्रयत्न तो करता नहीं, वो किस प्रकार पालीताने पहुच सके ? हा अलबत्ता न पहुच सके। वैसे-ज्ञानी ज्ञानसे जानता है कि, मोक्ष नगरीमें जाना हो तो वे नगरके दो मार्ग हैं। उसमें एक बडा रास्ता है, इस मार्गसे होकर जानेसे सत्वर पहुच सकते है। दूसरा मार्ग छोटा है, इस मार्गसे होकर जाते बहुत समय लगता है। एव आप जानता है तोभी, उन रास्तोंमेंसे कोईभी मार्गसे जानेका प्रयत्न नहीं करता। वह मात्र जाननेसेही मुक्ति नगरीमें किस प्रकार जा सके ? यदि वह दोनों रास्तोंमेंसे कोइभी रास्तेसे होकर जानेकी क्रिया करे तो मुक्ति नगरमें पहुच सके। वास्ते क्रिया करना भी आवश्यक है। अब मुक्ति नगर जानेके दो रास्ते बता-

ते हैं। एक देशविरतिपना अर्थात् श्रावक धर्म, दूसरा सर्व वि-
रतिपना अर्थात् साधु धर्म। ये दो रास्ते है। शक्ति हो तो
साधुव्रत अंगीकार करनेसे आसन्न मुक्ति नगरमें पहुचोगे।
तथा साधु धर्म पालनेकी शक्ति न होतो श्रावकके बारहव्रत अं-
गीकार करना, ये उभय न हो सके तो समकित सद्दहणा क-
रना। शुद्ध देव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्मकी श्रद्धा करना।
यह समकित भी मोक्षसुख देनेको समर्थ है। ये तीन सिवाय
मोक्ष नगरीमें जानेका चौथा रास्ता नहीं दिखाई देता। वास्ते
ज्ञान और क्रिया ये दोनोंसे मोक्ष होता है। कोई मनुष्य मोदक
बनानेकी अथवा दवा बनानेकी विधि जानता हो, यदि वह
मोदक और दवा बनानेकी सामग्री संपादन करके क्रिया करे तो
मोदक तथा दवा बना सके। परन्तु क्रिया न करे तो दोनो न
बन सके। कहा है कि:-

यतः

जाणंतो विहु तरिउ काइअ जोग न जुंजइ जोउ॥
सो बुडई सो एणं नाणी चरण हीणो॥ १॥

भावार्थ.—पानीमें तिरना जानता है, तो भी समुद्रमें अ-
थवा नदीमें गिरकर, यदि तिरनेकी क्रिया न करे और हाथ
पाव न हिलावे तो तिरना जाननेवाला आप डूबे। एवं ज्ञानी
भी मोक्षका उपाय जानता, है तो भी तदनुसार वर्तता नहीं तो

यह भी संसार समुद्रमें डूबता है। इस मुताबिक उपदेश रत्नाकर ग्रंथमें सहस्रावधानी श्री मुनिसुन्दरसूरि महाराज कहते हैं। फिर अन्यत्र कहा है कि —

हयं नाण किया हीण, हया अन्नाणओ किया ॥
पासंतो पंगुलो दद्धो, धाव माणोअ अंधओ ॥१॥

क्रिया रहित ज्ञान हीन हुआ समझना और ज्ञान रहित की क्रिया भी हीन हुई समझना। जैसे-देखते हुए भी पंगु जल गया और दौड़ता हुआ अंध जल गया। वैसे अकेली क्रिया और अकेला ज्ञान कुछ उपयोगमें नहीं आ सकता।

इस स्थानपर विशेष विवेचन किया जाता है। कोई पंगु और अंध अरण्यमें थे। उस समय एकाएक दावानल सुलगा, अंध अथवा नहीं जानता कि, किस ओर जाना और पंगु जानता है, परन्तु 'चलनेकी शक्ति नहीं है'। यदि वे दोनों परस्पर एक दूसरेकी सहायता किया करें तो दोनों मरजाय। परन्तु पंगु अंधेको कहता है कि, भाई! मैं जानता हूं किस ओर जाना। पर चल सकनेकी शक्ति मेरेमें नहीं है। अब यदि आप चलो और मैं आपके ऊपर बैठूं तो तुम और हम बच सकें। अंध वह ज्ञान मंजूर करके पाँवसे चले तो बच सके। एवं ज्ञान और क्रिया ये दोनोंका यदि मिलाप हो तो मुक्ति नगर पहुंच सके। अंध समान क्रिया जानना और पंगु समान ज्ञान जा

नना। एव पूर्वाचार्य दृष्टान्त घटाते हैं। ज्ञान ज्ञानावरणी कर्मका क्षय होनेसे प्रगट होता है।

प्रश्नः—क्रिया आत्माके घरकी है, या पुद्गलके घरकी है?

उत्तर—निश्चय कर देखते क्रिया पुद्गलके घरकी है, और ज्ञान यह आत्माका गुण है। जब सिद्ध स्थानमें जीव पहुंचकर परमात्मस्वरूप होता है, तब उस समय जीव अक्रियता पाता है। सक्रियता जहांतक कर्म है, वहांतक है। जब सपूर्ण कर्मका क्षय होता है, तब अक्रियता प्राप्त करसक्ते हैं। क्रिया मुक्ति प्राप्त करनेमें सहायकारी है। खाना, पीना इत्यादि अनेक क्रियाए ऽनियाम देखनेमें आती है, उसमें मुक्ति देनेकी शक्ति नहीं है। परन्तु जिस क्रियासे आत्माकी मुक्ति हो सके उस क्रियाका अवलम्बन करना चाहिये, और यह क्रियाको शुद्ध क्रिया कहना चाहिये। जैसे—आंख दुखने आई हो तब आंखमे लगे हुए उष्ण पुद्गल उनोके नाशके लिये शीत पुद्गलका संयोग सुरमा इत्यादि कारण है—वैसे आत्माको लगे हुए कर्म रूप पुद्गल उसके नाशके लिये क्रिया कारण भूत है। परन्तु याद रखना चाहिये कि, ज्ञान पूर्वक क्रिया इष्ट फल दे सक्ती है। जैसे कोई मनुष्यने किसीके घर जाकर मोदक, दूधपाकादिका भोजन किया—पश्चात् उसकी मरजी हुई कि, अपने मोदक तथा दूधपाक बनाना, एव निश्चयकरके दूध मिलाने लगा, घी मिलाया, परतु मोदक तथा दूधपाक किस प्रकार

बनता है, वह तो जानता ही नहीं। अत एव विचारा अकेली क्रियासे किस प्रकार मोक्ष बना सके ? एव हेय, ज्ञेय और उपादेयके ज्ञान सिवाय मुक्ति नगरी जानेके लिये अटपट जो क्रिया करना वह अयुक्त है। ऐसा समज कर उस मुताबिक करनेसे बहुत फायदा होता है।

प्रश्न --मंत्र जो होते हैं उसका अर्थ जाने बिना भी मंत्र जपनेसे फलकी सिद्धि होती है। एव बिना समजे भी क्रिया करनेसे इष्ट फलकी सिद्धि होती है, तो यह कैसे ?

उत्तर--मंत्रके बारेमें तुमने कहा वह जाना। मंत्रोंके अन्तरमें ऐसी सत्ता रही है कि, वे बिना समजे भी विधिपूर्वक जाप करनेसे इष्ट फल दे सकते हैं। परंतु वैसा नियम प्रत्येकमें नहिं होता। मंत्रकी विधि भी बराबर जानना पडती है। नहीं तो उलटी विधि यदि हो तो अनिष्ट फल पासक्ते हैं। एव प्रत्येक बाबत समजके उसकी प्रवृत्ति करना चाहिये, और जो क्रिया करनेकी है, वह बिना समजे नहीं होती। यत् किंचित् भी समज तो होती है। छोटा बालक रोगादिसे भी अपना मनोवांछित दिखाने प्रयत्न करता है। एव कोई मनुष्य कुछ क्रिया करता है, उसका फल क्या है, वह जानकर प्रवृत्ति करता है। क्रिया पाच प्रकारकी बताइ है।

॥ दुहा ॥

अनन विष गरल थके, चार गतिमें भमत ॥

तद्धेतु अमृत थके, केवल ज्ञान लहंत ॥

प्रथमकी ए तीन क्रिया करनेसे चारगतिमें भटकना पडता है- और तद्धेतु तथा अमृत क्रिया करनेसे केवल ज्ञान पा सकते है। वर्तमान विषम काल है। कितनेक जीव क्रिया करनेसें कायर बनके क्रियाकांड उठा देते है, वह अनुचित है। सबब कि श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय कहते है कि:-ज्ञानपर्ण त्या परीखीएजी, ज्या रहु किरिया व्याप। समजके क्रिया करनेसे विशेष लाभ होता है। ज्ञान और क्रियासे करके मोक्ष है। मोक्षदशा प्राप्त करनेमें ज्ञानकी मुख्यता और क्रियाकी गौणता जानना। श्रीरत्नशेखर सूरि महाराजभी कहते है कि:-

ज्ञानच भवढये पिहितावहं
प्राय स्तस्मा देवेष्ट कार्य सिध्धे ॥
अन्यथा तद्वैपरित्यापत्ते'
अनुभव सिध्ध चेदं सर्वेषाम् ॥

इत्यादिसे ज्ञानकी मुख्यता सिद्ध होती है। दोनोका अवलंबन करना उसमें सार है। ज्ञान और क्रिया इसमें ज्ञान-पद प्रथम रखनेका कारण यह है कि, ज्ञानसे क्रिया हो सकती है। बिना समजे प्रवृत्ति नहीं होती। वास्तेही ज्ञानपद प्रथम धरनेमें आया है। ज्ञानकरके आतमस्वरुप जाने पश्चात् आत्मा-

की जो मोहदशामें प्रवृत्ति होतीथी वह बध पडती है। और मुक्तिमें जानेके लिये रुचि होती है। ज्ञानसे ससार जलते अग्नि समान मालुम होता है, और ज्ञानसे आत्मस्वरूपमें रमणता हो सकती है। वास्ते भव्यजीवोने गुरुगम ज्ञान मिलाने प्रयत्न करना। ज्ञान प्राप्त किये पश्चात् सहज चिंतवन करते आत्मानुभव होने लगेगा, आत्मानुभव होते जो सुख होगा वह अन्यक्त आगे नहीं कहा जा सकेगा।

दुहा

चदचकोर निहाळीने, आनद पामे जेम ॥
सद्गुरु वाणी सूणता, भवि मन आनद तेम ॥ ८ ॥

चकोरपक्षी चद्रको देखकर आनदित होता है, वसे सद्गुरु महाराजका मुख देखते, वैसेही उनोकी वाणी श्रवण करते, भव्य जीवोको आनद होता है। सद्गुरुको देखत जिसके हृदयमें हर्ष उत्पन्न नहीं होता वे जीव दुर्भव्य जानना। श्री सद्गुरु जगम तीर्थ है, तीर्थ भी सद्गुरु समान कोइ नहीं है। स्थावर तीर्थसे भी सद्गुरु विशेष पूज्य है। कारण कि स्थावर तीर्थकी पूज्यता भी श्री सद्गुरु पहिचानाते हैं। मुक्ति मार्ग और दुर्गति मार्गका स्वरूपभी श्री सद्गुरु बताते है। कितनेक जीव अपने आप पोथी वाचकर तत्त्व पाये ऐसा अभिमान धारण करते है, परन्तु उससे विशेष आत्म हित नहीं होता। विना सद्गुरुके उपदेशके

उससे कोइ विशेष लाभ नहीं होता। सद्गुरुके मुखकी वाणीसे जो आत्महित होता है, वह लाभ अपने आप पुस्तक वाचनेसे नहीं होगा। जिसकी सद्गुरुपर श्रद्धाभक्ति कम, उत्तनाही उसको धर्म प्राप्तिमें अल्प फल होता है। विना गुरुके धर्मकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। जिसको गुरुपर श्रद्धा है, उसने थोडा जाना तो भी बहुत जाना, अल्प धर्म सेवनभी अधिक फल देगा। विना गुरुके स्वच्छंदी जीवोंका आत्मा क्षार क्षेत्र समान जानना और गुरुपर पूर्ण श्रद्धा है, ऐसा श्रावक अगर साधु शिष्योंका आत्मा उत्तम खेतके सदृश जानना। जिनसे धर्म प्राप्ति हुई हो ऐसे धर्माचार्यका हृदयमें वारवार स्मरण करना। जिस गुरुने अपने उपर बहुत उपकार किया है, उनोंकी अत्यन्त भक्ति करना। उनोंका मन सदा प्रसन्न रखना। उनोंकी आज्ञाका उल्लंघन न करना। गुरुकी देवसे भी अधिक भक्ति करना। जिसको सद्गुरु उपर श्रद्धा नहीं उसको मुक्ति उपरभी श्रद्धा नहीं है। जिसने सद्गुरुका अनादर किया, उसने मुक्तिकाभी अनादर किया। पचमहाव्रत धारी, धर्मदानदायक श्री सद्गुरुको पुज. ? विनयपूर्वक वंदन करना, उनोंकी वैयावच्च (सेवा चाकरी) करना, श्री सद्गुरुको आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, पुस्तकादिसे प्रति लाभना। श्री सद्गुरु कल्पवृक्षसेभी अधिक है, कल्पवृक्ष मुक्ति नहीं दे सक्ता और श्री सद्गुरु तो मुक्ति देनेको समर्थ है। श्री सद्गुरु

चिंतामणि रत्नसे भी अधिक है। चिंतामणि रत्न मोक्ष सुख नहीं दे सक्ता और श्री सद्गुरु उपदेशद्वारा और उनोके कथनानुसार चलनेसे-वर्तनेसे मोक्ष सुख भी प्राप्त करवाते हैं। श्री सद्गुरु सूर्यसे भी अधिक है, सूर्य बाह्यवस्तुको प्रकाशित करता है, और श्री सद्गुरु तो आत्मा तथा उसके अनंत गुणोका बोध देकर हृदयमें प्रकाश करते हैं। श्री सद्गुरु चंद्रसे भी अधिक है। सबब कि चंद्रकी जो शीतलता है, उससे अधिक श्री सद्गुरु समता करके शीतल है। चंद्र तो मात्र रात्रिके समयमें प्रकाश करता है, और श्री सद्गुरु तो रात्रि और दिनमें भी भव्य जीवोको ज्ञानसे करके प्रकाश करते हैं। श्री सद्गुरु वह्निसे भी अधिक है सबब कि, अग्नि तो एकेंद्रि है, और वह कुछ कर्म जलाने समर्थ नहीं है। और सद्गुरु तो ध्यानाग्निसे कर्म काष्टको जलाके भस्म करते हैं। श्री गुरु जलसे भी अधिक उत्तम है। सबब कि, जल तो मेघ रूपसे आकाशमें उपर चड़कर नीचे पडता है, परन्तु श्री सद्गुरु तो गुणस्थानक पर चढते नीचे नहीं पडते। लोकके अग्रस्थानमें कर्मरहित होकर निवास करते हैं। श्री सद्गुरु मेरुपर्वतसे भी श्रेष्ठ और धैर्यवान् है। स्वपर भव जल तारक [illegible]
दर्शनका लाभ महत पुण्यके योगसे
ज्ञानके समुद्र समान श्री सद्गुरुको
त्यानदित होते हैं, [illegible]

अनत सुखमय शाश्वत पद पाते हैं। श्री सद्गुरको देखते विनयवानोंने खडा होना, तत्पश्चात् खमासमण पूर्वक सुखशाता पूछना, चरण कमलमें मस्तक रखना, हर्पसे विनयपूर्वक सेवाभक्ति करना, मनमें ऐसा विचारना कि, अहो! आज मेरा दिन सफल हुआ। अहो! आज मैंने मनुष्य जन्म पायेका फल ग्रहण किया। "सद्गुरोर्दर्शनात् शातिः" आज मैंने सची शाति ग्रहण की। अरे पापकर्मरुपी सर्पो! तुम दूर जाओ। सबब कि, गरुड समान श्री सद्गुरुके उपदेशने मेरे हृदयमें प्रवेश किया है। हे जन्म जरा मरणके दुःखरुप मृगो! तुम अब सत्वर भाग जाओ। सबब कि, केशरी सिंह समान श्री सद्गुर अब आये हैं।

हे दुर्वासनाए! अब तुम मनमेंसे निकाल जाओ। नहीं तोभी अन्तमें श्रीसद्गुरु वचनामृतसे तुमारा नाश होगा। अनादिकालसे मेरे साथ रहनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ रुप कुमित्रो! अब तुम भग जाओ! सबब कि, अब तुम मेरे शत्रु हो। एव श्रीसद्गुरु वाणीसे मैं जानता हू। कर्मसे बन्धे हुए हे शरीर! अब मुझे मोक्ष मार्गमें सहायक हो। सबब कि, अब मुक्तिमें जानेके लिये सद्गुरु सार्थवाहका समागम हुआ है। अहो आज चिंतामणि रत्नसेभी अधिक लाभ हुआ! आज मैंने श्रीसद्गुर रुप कल्पवृक्षका दर्शन किया। श्री सद्गुरुकी श्रद्धा भक्ति फळ समान है। श्री सद्गुरुके वचन रत्नवत् हृदय

सद्कर्मे सभालकर रखुगा । श्री सद्गुरु जिस मुताबिक कहेंगे उस मुताबिक वर्तुंगा । श्री सद्गुरुका वारवार संयोग होना कठिन है । वास्ते अब मैं कैसे प्रमाद करूं ? अहो ! श्रीसद्गुरुने पचमेरु समान पचमहाव्रत धारण किये हैं, अहो ! उनोके सामने गृहस्थावासी, मोही, लोभी, पापारंभी संसारको असार जानते हुएभी उसमें पड रहनेवाला मैं क्या हिसाबमें हूं ? कहा मेरुपर्वत और कहा सरसोंका दाना, कहा सूर्य और कहा खद्योत । मुझ महा पापी जीवको तारने श्रीसद्गुरु जहाज समान है । अहो कृपा समुद्र सद्गुरुको मेरी क्या अपेक्षा है । तोभी मेघवत् उपदेश दृष्टि मेरे उपर वर्षाते हैं । ऐसी सद्गुरुकी मेरे उपर कृपा है । अहो श्री सद्गुरु कर्मरूप काष्ट जला डालनेके लिये वह्नि-अग्नि समान है । कर्मरूप काष्ट जला डालनेको वह्नि समर्थ नहीं है, और श्रीसद्गुरु समर्थ हे । श्री सद्गुरु महाराजके पूर्व पुण्योदयसे आज मैंने दर्शन किये । कहा है कि —

॥ दुहा ॥

श्रीसद्गुरु दर्शन विना, जीव भटक्यो संसार॥
श्रीसद्गुरु दर्शन करी, समज्यो धर्म विचार॥ १।
सद्गुरु वचनामृत थकी, भवोभव ताप शमाय ॥
सद्गुरु वचने स्थिरजे, मुक्ति करतल न्याय ॥ २ ॥

पद २ कंटक वृक्षनो, संयोग सहेजे थाय ॥
कल्पवृक्ष संयोगते, दुर्लभ जाणो भाय ॥ ३ ॥
भक्ति बहुमाने करी, सेवो भवि गुरु राय ॥
जिनवाणी श्रवणे सुणी, लहेशो मोक्ष उपाय ॥ ४ ॥
जड चेतनने जाणता, श्रीसद्‌गुरु महाराज ॥
पंच महाव्रत पाळता, जाणो भव जल जहाज ॥ ५ ॥
तन मन धनथी जेहने, प्यारा सद्‌गुरु नित्य ॥
गुरुविनयी शिवसुख लही, होवे शुद्ध पवित्त ॥ ६ ॥

इत्यादि । इस ससारमें सारमें सार मैत्रीका स्थानभूत श्री सद्गुरु है । भव्योंने मोक्षकी प्राप्तिके लिये श्री सद्‌गुरु द्वारा धर्म सेवन करना । श्री मुनिश्वरको गुरु नहीं माननेवाले जीवोंकी सद्‌गति होना दुर्लभ है । श्री सद्‌गुरुसे वञ्चित जीव वारवार ससार समुद्रमें इधर उधर दु.खी होने भटकते है ।

श्रीसद्‌गुरुका स्मरण, भक्ति, बहुमान, येही सच्चा मोक्षका उपाय है ।

ससार तिरने जो समर्थ हो, ऐसे सद्‌गुरुका आधार अत्यत पुण्यसे प्राप्त होता है ।

॥ दुहा ॥

मान सरोवर हंस ज्युं, मुख्याने जिम अन्न ।

सद्गुरु वाणी सुणता, हरखे भवि जेम मन ॥७॥

मान सरोवरको देखकर हंस जैसे आनंदित होता है, और क्षुधातुर मनुष्य अन्नको देखकर हर्षित होता है, वैसे पंचमहाव्रतधारी, जिनेश्वरकी आज्ञानुसार उपदेश दाता, श्रीसद्गुरुकी वाणी श्रवण करते भव्योंके हृदयमें हर्ष होता है। कमलपत्रवत् संसारके प्रेममें लुब्ध नही होते। मेरु समान धीर है। समुद्र समान गंभीर गुणगणके शोभित है। आकृतिसे चंद्रमाकी सौम्यताकोभी जीतनेवाले हैं। कुदेव, कुगुरु, कुधर्मरूप मिथ्यात्वके टालनहार हैं। व्यवहार और निश्चय नयके ज्ञाता हैं। स्याद्वाद धर्मको हृदयमें धारण करके भव्यजीवोंको भी स्याद्वाद धर्मके उपदेश दाता है। क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार कषायको जीतनेवाले हैं। पंच मेरुके बोझे समान पंच महाव्रतके बोझको वहन करनेवाले है। पंचसुमति युक्त श्री सद्गुरु हैं, और पंचम मोक्षगती उसके आराधक हैं। पंच समवायी कारणाको जीतनेवाले हैं। पंचाचार आप पालतेहुए अन्य भव्यजीवोंको भी उसका उपदेश देतेहैं। पंच क्रियाको जानकर तद्धेतु और अमृत क्रियाके सेवन करनेवाले है। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श यह पांच विषयोंके त्यागी सद्गुरु जानना। छ प्रकारके बाह्य और छ प्रकारके आभ्यंतर तपके ज्ञाता तथा उसके करनेवाले सद्गुरु हैं। छ कायके जीवोंका रक्षण करनेवाले है। षड्‌रिपुको जीतनेवाले, छ प्रकारकी हानी

वृद्धिके ज्ञाता गुरु महाराज हैं। सात भयके जीतनेवाले, और आठ मदके टालनहार श्री सद्गुरु हैं। अष्ट प्रवचन माताके सम्यग् रीतिसे आराधन करनेवाले, अष्टमी गतीके अभिलाषी श्री सद्गुरु हैं। नव प्रकारके पाप नियानेके त्यागी, समभावसे रहनेवाले श्री सद्गुरु हैं। नव प्रकार ब्रह्मचर्यकी गुप्तिको धारण करनेवाले श्री सद्गुरु हैं। दश विध सयमके आराधक, ग्यारह अग और बारह उपांगके ज्ञाता, तेरह काठीयाके विजेता, चौदह विद्याके खप करनेवाले, चौदह गुणस्थानक त्यागकर पचम गत्याभिलाषी श्री सद्गुरु हैं। पचदश भेदसे सिद्धके ज्ञाता, सोलह कषायके जीपक, सतरह भेदसे सयम आराधक, अठारह हजार शीलागरथके धोरी, एकोनविंश काउसग्ग दोषके टालनहार, वीस असमाधि स्थान निवारक इत्यादिक अनेक गुणोंसे करके वीराजमान श्री सद्गुरु महाराजा ससाररूप समुद्रसे चारित्ररूप जहाजसे करके पार हो जाते हैं। अहो! ऐसे गुरुका आश्रय जो जीव करते हैं, वह भी ससार समुद्रसे पार हो जाते हैं। सात नय और सप्तभगीके ज्ञाता श्री सद्गुरु हैं। गुरुकुल निवासमें रहके सद्ज्ञानसे सर्व उपमाओंके लायक है। वह श्रुतकी उपमाए श्री उत्तरा ययन नामके एकादश (ग्यारहवे) अ ययनमें वर्णन की है।

वे उपमाए जिसको योग्य है, ऐसे गुरु महाराजको देखकर किसको हर्ष हुए विना रहे? किसीको हर्ष हुए विना न रहे। पच महाव्रतकी पचीस भावनाए करके जिसने अपने आत्मा

का ध्यान किया है, और व्यवहार तथा निश्चय चारित्र स्वरूपके ज्ञाता गुरु महाराज है। पापारंभके कामोंका जिसने त्याग किया है, सिंह समान शूर, भारंड पक्षी सम अप्रमत्त और बेतालीस दोष रहित आहार ग्रहण करके ग्रामोग्राम विहार करनेवाले श्री सद्गुरुको देखकर जिनोंको हर्ष न हो वह अयोग्य जीव जानना। आर्तध्यान और रौद्रध्यानके नाशनहार श्री सद्गुरु है। धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें स्वरूप निर्मल करने आठ कर्मोका क्षय करनेवाले श्री सद्गुरु है। वर्तमान कालमें द्रव्य, क्षेत्र और भावसे यथाशक्ति चारित्र पालनेमें महत है। कोमल मधुर वेरा वश त्याग करके शुद्ध धवल वेशपक्षो धारण करनेवाले श्री सद्गुरु है। ऐसे सद्गुरुको देखकर खडे होना, दो हाथ जोडना, तीन नमस्कार देना, सुखशाता पूछना, उनोकी सेवाभक्ति करना, और उनोंकी देशना अयत हर्षसे श्रवणकरना। श्री सद्गुरुका उपदेश श्रवण करनेमें जिनोंकी रुचि है, ऐसे भव्य जीवोंको सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होती है। स्वाभाविक रीतिसे उपशमपना आसन भव्यात्माओंको होता है, और वैसे जीवोंको सद्गुरु वाणी श्रवण करनेके लिये मनमें अत्यंत रुचि वर्तती है।

दुहा.

मान निहाळी बाळज्यु, रणमध्ये जिम योध ॥
सद्गुरु पामी भव्य तेम,अनुभवनो लहे बोध ॥१०॥

जैसे-छोटा बालक अपनी माताका विरह होते शोक धारण करता है, और जब अपनी माताको देखता है, पश्चात् उसको जैसा हर्ष होता है, तथा युद्धमें सुभटको शूर व्यापते लडनेमें हर्ष होता है, वैसे श्री सद्गुरू महाराजको देखते भव्य जीवके मनमें हर्ष होता है, और उससे जीव अनुभव बोध श्री सद्गुरूसे प्राप्त कर सक्ता है। अनुभव ज्ञान पाते उसको जाननेका शेष कुछ नहीं रहता। पार्श्वमणिके सयोगमे लोह सुवर्ण रूप होता है, परन्तु काष्ट पार्श्वमणिका सयोग होते सुवर्ण रूप नहीं होता। जिस जीवको सद्गुरूपर प्यार भक्ति-बहुमान है वे जीव अनुभवज्ञानकी योग्यता वाला हो सक्ता है, विना योग्यताके धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। जो भव्य रागद्वेष रहित हो, मोक्षका अभिलाषी हो, अक्षुद्र गुण करके युक्त हो, लज्जा युक्त हो, अन्यके छिद्र दर्शक तथा कहनेवाला न हो, पक्षपात रहित हो, सत्यका आग्रही हो, विनयवान् हो, जिसको गुरू महाराज उपर विश्वास हो, ऐसा जीव धर्मरत्नकी योग्यतावाला है। विना योग्यताके धर्म रत्नकी प्राप्ति किसी कालमें नहीं हो सक्ती।

अब गुरू महाराज कैसे होते हैं वह बताते हैं —

गाथा.

अयतरिसि आलमकड,

करि हरि भारड जच्चणो अनिआ ॥

सपरभव वारि तारण,
असध्य सध्या बहु गुरूणो ॥ १ ॥

कितनेक गुरु लोहेकी नाव समान होते हैं, जैसे लोहेकी नाव आपभी डूबती है और उसमें बैठने वालेको भी डुबोती है, वैसे गुरू ऐसा नाम धारणकर लोगोंको ठगते हैं, अपना स्वार्थ साधनेके लिये लोगोंको अदम् पदम् समझाते हैं। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्षादि पदार्थों का स्वरूप नहीं जानते, बगध्यानीके समान अपने स्वार्थमें लपट ऐसे कुगुरू लोहेकी नाव समान है। ऐसोंका संग न करना, उनका कथन सब असत्य जानना, जोगी, पादरी, बाबा आदि सब लोहेकी नाव समान है, मांस खावे, जीवोंका नाश करे, गांजा भंग पीवे तो भी मैं गुरू हूं एवं लोगोंमें व्यवहार करावे, अपि वे झूंठे पैसे समान जानना। अब उनोंको लोहेकी नाव समान किस कारणसे जानना सो बताते हैं।

प्रथम जोगी विषे विचार करे, कितनेक जोगी आत्म स्वरू-पके ज्ञाता नहीं होते, सर्वज्ञ किसे कहना उसका भान नहीं होता, भस्म लगाना, अलक जगाना, हर २ शिव २ शब्दके उच्चारण मात्रसेही अपनेको धर्मी मानते हैं; परंतु विचारे भगवत्कथित तत्वका स्वरूप नहीं समजते। पापारंभके काम करते है, हिंसा, झुठ, चोरी, परिग्रहसे निवृत्त नहीं हुए वे विचारे कर्मका नाश किस प्रकार कर सकें ? हरगिज कर्मका नाश न कर सकें, और

चार गतिमें वारवार भटकेंगे वैसे गुरुको मानने वाले जीवभी चारगतिमें भटकेंगे। बावा भी अलक जगाते हैं, भगवे वस्त्र धारण करते हैं, कोई तो स्त्रीभी रखते है उसको माई कहते हैं, वह दोनोंभी आत्मस्वरूप नहीं जानते, सात नय, नव तत्त्व, षद्द्रव्यादि पदार्थोंका स्वरूप नहीं जानते, हिंसा, चोरी, परिग्रहमें आसक्त रहते हैं, हर हर आदि शब्दोंको अगर भजनोंको गा जानते है, परन्तु तदनुसार वर्तते नहीं । आरंभादिक कार्यमें सदा निमग्न रहते हैं, संसारी जैसे ससारमें वर्तते हैं, वैसे आप भी वर्तने वाले हैं, अतःएव वहभी लोहेकी नाव समान जानना। अर्थात् विचारे आपभी डूबते हैं, और उनोंका जिनोंने आश्रय किया होता है वहभी ससार समुद्रमे डूबते हैं। ख्रीस्ति धर्मका उपदेश देनेवाले पादरीभी लोहेकी नाव समान है, सबब कि, पादरी स्त्री सभोग करते हैं, पैसा पास रखते हैं, गौ आदि पशुओंमें तथा पक्षीओंमें जीव नहीं मानते, मास खाते हैं, जीव हिंसा करते है, गरीब लोगोंको आजीविकासे लुभाकर अपनी मत-मजहब रूप कपट जालमें फँसाते है, पादरी ईश्वरको मानते हैं, और उस इश्वरका इशु पुत्र है, और उसकी माता मरीयम है, इश्वरने दुनियाको पैदा की ओर वे दुनियाको बने लगभग सात हजार वर्ष हुए हैं, ऐसी उनोंकी मान्यताए है। परन्तु विचारे समजते नहीं कि, इश्वरको तो और पुत्र होगा ? इश्वर तो निराकार है, तो निराकारसे साकार ऐसे इशुकी उत्पत्ति नहीं हो सक्ती। यतः

'निराकार सकाशात् साकारस्य उत्पत्तिर्न भवति' अर्थात् निराकारसे साकारकी उत्पत्ति नहीं होती। यह दुनिया अनादि कालकी है, दुनियाका कर्ता कोई नहीं है और दुनियाका किसी कालमें नाशभी न होगा। ईश्वरने दुनिया बनाई है ऐसा कथन वे असत्य होता है। सबब कि, ईश्वर तो रागद्वेष रहित निराकार है, उसकी जगत् बनानेमें प्रवृत्ति न हो, और उससे दुनिया न बने यह स्वाभाविक है। अन्य जीवोंको मारकर उसके शरीरका भक्षण करना उससे महापाप होता है, वास्ते ख्रीस्ति धर्मभी असत्य है, उसका संग न करना और सुगुरुका संग करना। फकीर भी लोहेकी नाव समान जानना, खुदाको ईश्वर स्वीकारते हैं, खुदा सबको पैदा करता है, खुदाको नहीं मानता वे दोजखमें जाता है, वास्ते सर्व मनुष्योंने खुदाका शरण अंगीकार करना। एवं फकीर आदि उपदेश देते हैं, परंतु वे यथायोग्य नहीं। सत्य देव अष्टादश दोष रहित प्रभु उनोंको रागद्वेष नहीं होते, प्रभु किसीको उत्पन्न नहीं करता, इस विषयमें विशेष जाननेकी आवश्यक्ता होतो हमारी बनाई हुई "जैनधर्म और ख्रीस्ति धर्मका मुकावला" नामक पुस्तकमें "जैन धर्मकी सत्यता" नामक पुस्तक वाचना उसमें ईश्वर सृष्टि कर्ता नहीं है, इस विषयमें भली भाँति विवेचन किया है।

हे शिष्य! श्रवण कर—इस संसारमें किसि समयमें रागद्वेष नष्ट होनेवाले नहीं हैं, रागद्वेष और मिथ्यात्वसे यह स-

सार सर्वदा व्याप्त रहेगा, यह वचन संसारमें रागद्वेषका अस्तित्त्व सूचक है। चाहे जितने उपायोंसेभी रागद्वेषका नाश नहीं होता, वास्ते स्वभारव्यानुसार स्वआत्मव्यक्तिनिष्ट रागद्वेष दूर करने प्रयत्न करना उचित है। इस ससारमें कितनेक शृगाल समान गुरू है, आप ससारिक पदार्थोंको सार गिनकर उसके उपभोगमें मचे रहेते हैं, और अपना गुरुत्व मनानेमें अनेक प्रकारकी युक्तियां रचकर भोले जनोंको फसाते है। हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री परिग्रहसे आप अलग नहीं हुए, विश्रान्ति नहीं पाये, वैसा होतेभी गुरूनाम धराना ये कपटजाल है, वैसे साधु आप ब्रह्मचर्य पाळे और उनोंके गुरुतो स्त्रीके सह पलगमें भोग भोगवे, वाहजी वाह !!! ऐसे गुरूओंके लिये नरककी चार पाई तैयारहै। कुदेवमे देवपना, कुगुरूमें गुरूपना, और कुधर्ममें धर्मपना साधु तथा उनोंके भक्त मानते है। जैसे शृगाल अन्य प्राणीओंको ठगनेमें चतुर है, वैसे साधुभी आपके मिथ्या आचारसे अन्योंको भक्त बनाकर उसके पाससे पैसे लेकर अपने आचार्यको समर्पण करनेमें कुछ शेष नहीं रखते। उनोंको गुरू मानना ये ससारभ्रमण हेतु है। कितनेक महाराजभी अपनी स्वार्थबुद्धि और विषयलालसामें लिप्त रहते है। औरतको अपना भक्त बनाकर उसके पाससे पैसा लेना और व्यभिचार इत्यादि कृत्योंसे स्वजीवन व्यर्थ गँवाते हैं। जहा तक स्त्री और पुत्रादिपर प्रीति है वहातक स्वतःकी दुर्दशा है तो अन्योंकी सुदशा कैसे प्राप्त करा सकेंगे?

जो गुरू आप तिरनेको समर्थ नहीं तो वह अन्योंको किस प्रकार तार सकेंगे ? ऐसे गुरु शृगाल समान गुरू जानना, उसका संग न करना ।

खटमलके समान चचल चित्तवाले जीवादि पदार्थोंसे अज्ञान, देवगुरूके स्वरूपसे अज्ञान, हिताहित, विवेक परिमुक्त ऐसे मर्कट समान कुगुरू जानना । बावीस अभक्ष्य रात्रीभोजनके भक्षक, परिग्रह (द्रव्य) रखनेवाले हैं तो भी मै गुरू हूँ, एव अन्य प्रति कथन करनेवाले मर्कटसमान गुरू जानना । ऐसे गुरूओंका त्याग करना ।

अपने व्रतमें दूषण न लगानेवाले, ससारको असार जाणनेवाले, नवतत्त्वके ज्ञाता, रामना नदीमें स्नान करनेवाले, जिनाज्ञापालक गुरू हस्तिसमान जानना । सकलशास्त्र परगामी, सातनयसप्तभगी, पट्द्रव्य निक्षेपादिसे यथार्थ तत्त्वज्ञाता, पचमहाव्रतरूप पच मेरुके बोझको वहन करनेवाले, कचन कान्ता त्यागी, ऐसे गुरू सिंहसमान जानना । ऐसे गुरू मिथ्यात्वरूप मृगाको डरा देते हैं । सतरा भेदसे सयम आराधक, निद्रा प्रमादके त्यागी, शत्रु और मित्र उपर जिसने समभावसे चित्त स्थापन कियाहै*, पट्द्रव्यके गुणपर्यायको जाननेवाले, वैराग्यसे आत्माका उद्धार करनेवाले, ग्रामोग्राम विहार करनेवाले गुरूजी भारड पक्षीकी उपमा पाते है । जिनेश्वर भगवानकी वाणीसे जिसने भली भाँति

* द्रव्य क्षेत्र कालानभावसे चारित्र पालन करनेमें तत्पर.

तत्व जानकर उसकी श्रद्धा हृदयमें की है, सिंहसमान शूरवीर होकर संसार छोडके जिसने दीक्षा ग्रहण की है, जीवादिक नव पदार्थोंका स्वरुप सातनयसे करके यथार्थ रीति जानाहै, पंच महाव्रतको चढते भावसे पालते है और असार संसारमें किंचित् मात्रभी कोई पदार्थसे मोहित नहीं होते, अठारह हजार शिलांगरथके धोरी, स्वात्महित साधक, स्वस्वभावमें रमण करनेवाले, परभाव त्यागी, हंसपक्षीवत् स्व और परका भेद करनेवाले, मुनिवर्य मुकुट समान जिनाज्ञाके दिन प्रतिदिन अखंड वाहक, ग्रामोग्राम अप्रमत्त विहार करनेवाले, परवस्तुमेंसे ममत्वभाव त्यागी आत्मस्वभावमें रमण करनेवाले हैं।

वे संसार समुद्रको तिरते है और अन्योंकोभी तारते है। ऐसे सद्गुरूका आश्रय करनेसे जन्ममरणके दुःख नष्ट होते है। शास्वत सुख पा सक्तेहै। इस मुताबिक गुरू आप तिरनेवाले और दूसरोंको तारनमें शक्तिवान् जानकर सुगुरुका आश्रय करना। फिर गुरुके दो भेद है। १ लौकिक गुरू और २ लोकोत्तर गुरू। सन्यासी, भरडा, भक्त, जोगी, फकीर, ब्राह्मण, पादरी आदि लौकिक गुरू जानना। उसका त्याग करना चाहिये। लोकोत्तर गुरुके दो भेद है। १ लोकोत्तर गुरू और २ लोकोत्तर सुगुरू। जिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका उत्थापन करके अपने हटसे चलनेवाले, जिनाज्ञा विरुद्ध उपदेश देनेवाले ऐसे लोकोत्तर कुगुरू जानना। जिनाज्ञानुसार चारित्र पालते जो रहते हैं

कोत्तर सुगुरू जानना। फिर निक्षेपेसे गुरूका वर्णन करते हैं. १ नाम गुरू २ स्थापना गुरू ३ द्रव्य गुरू और ४ भावगुरू। किसी का गुरू ऐसा नाम पाडा वह नाम गुरू। कोइभी वस्तुमें गुरूकी स्थापना वह स्थापना गुरू और गुरूका वेष पहनकर गुरूतत्त्वके उपयोगमें जो शून्य, आत्म उपयोगसे शून्य होतेभी उपरके वेष युक्त हो, वह द्रव्यगुरू। जीवतत्त्वको और अजीवतत्त्वको भली प्रकार जानकर, पुद्गलभाव त्यागके आत्मगुणमें रमण करनेवाला आत्मा परमात्मपद पाता है। उसके लिये यथायोग्य चारित्रपालक मुनिराज जिनाज्ञाविरूद्ध उपदेश न देनेवाले, आत्मोद्धारक, कषाय निवारक, मुनिराज भावगुरू जानना। ऐसे गुरूको पाकर भव्यप्राणी यथातथ्य आत्मतत्त्वको जानते हैं, और स्वआत्म स्वरुपका अनुभव बोध प्राप्त किये हुए सद्गुरूको देखकर आत्माम अत्यंत आनंद होता है, स्वपर तारक तरणि समान ऐसे गुरूका संयोग अत्यंत पुण्यके योगसे होता है।

श्री सद्गुरू पचाचार पालते हैं, और अन्यसे पलवाते है, आप मुक्ति जाते है और अन्योंकोभी उपदेशद्वारा मुक्तिपद प्राप्त करवाते हैं, आप निर्मोही होते हैं, अन्यको निर्मोही करते हैं। कितनेक गुरू पान समान है, कितनेक कागद समान है। ऐसे गुरू आप तिर सक्ते हैं। कितनेक गुरू जहाज समान है हजारों लोगोंको तारते हैं, भिन्न २ प्रकृतिवाले पुरुषोंको एक गुरू

कि नहीं रहेती। जैसा जिसका कर्म, जैसी भवितव्यता

तदनुसार गुरुओंकी प्राप्ति होती है। आसन्न भव्यात्माओंको सुगुरू उपर भक्ति, बहुमान तथा श्रद्धा रहती है, जिसके उपर गुरुकी कृपा होती है वे सत्वर ससार समुद्रके पार हो जाते हैं। कहाहैकि —

दुर्लभो विषयो त्यागो, दुर्लभ तत्त्वदर्शनम् ॥
दुर्लभा सहजावस्था, सद्गुरो करूणां विना॥१॥

विना श्री सद्गुरूकी—कृपा के विषयोका त्याग होना दुर्लभ है, तत्त्व साक्षात्कारका असभव है, और स्वाभाविकी सहजावस्थाका प्राप्त होनाभी दुष्कर है।

गुरु यो मानवै रन्यै सम पश्यति मोहत ॥
न तस्यास्मिन् भवे लोके, सुखं नैव परत्रवा॥२॥

जो प्राणी सद्गुरूको अज्ञानसे मदोन्मत्त अवस्थासे सामान्य मनुष्यवत् गिनता है, उसको इस लोकमें एव पर लोकमें सुख प्राप्त नहीं होता।

गुरो विमुखता याते, विमुखा सर्व देवता ॥
भवन्ति क्रियमाणच, पुण्य पाप हि जायते॥३॥

जब गुरू विमुख होते है तब सर्व देवताभी विमुख होते हैं, जो पुण्य पाप करनेमें आता है वह भी पापरूप हो जाता है। अर्थात् गुरु महाराजके मेपसे सव क्रिया शुभ फल देनेवाली होती है।

अज्ञानान्ध्यनिहन्ता विचीरत ।
विज्ञान पंकजोल्लास ॥
मानस गगन तल मम ।
भासयति श्री निवास गुरुभानु ॥ ४ ॥

अज्ञान रूप अंधकारका नाश करनेवाले तथा ज्ञान रूपकमलका जिनोंने विकाश किया है, ऐसे लक्ष्मीके निवास स्थान भूत गुरू सूर्य मेरे मनरूप आकाश तलको प्रकाशित करते है ।

शरण नाहि मम जननी न पिता ।
न सुता न च सोदरा नान्ये ॥
परम शरण मिदमेव वरण ।
मम मूर्ध्निदेशिकन्यस्तं ॥

मेरा शरण माता नहीं है, एव पिताभी नहीं है । पुत्र, भाई भी नही है । मेरी परम विश्रान्ति तो श्री सद्गुरूने मेरे मस्तक ऊपर धरे हुए चरणमें ही रही है । इस विना श्री सद्गुरूके अध्यात्मशान्ति नही होती ।

श्री भगवद् गीतामें भी कहा है कि —

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेश्यति ते ज्ञान, ज्ञानिन तत्त्वदर्शिन ॥

नमस्कार आदि विनयसे तथा प्रश्न पूछकर, तथा सेवा करके तत्त्व प्राप्त होता है। एव हे शिष्य ! तुं जान। तत्त्वदर्शि और अनुभवी पुरूष वह ज्ञानका तुजको बोध करेगा। अतःएव हे शिष्य ! तुं आधि, व्याधि और उपाधिका त्याग करके शाश्वत पाद प्राप्त करेगा। ॥

लाभा लाभे सुखे दुःखे जीविते मरणे तथा ॥
स्तुति निन्दा विधानेच साधवः समचेतसः ॥१॥

लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, तथा स्तुति, निन्दाके विषे श्री सद्गुरू महाराज समभाव धारण करते हैं। कदापि सर्पके फुत्कारवत् उपरसे वचनद्वारा तथा शरीरसे सामने वालेको शिक्षाके लिये आचरण करें परन्तु अन्तःकरणसे लिप्त नहो, ऐसे श्री सद्गुरूअनेक प्रकारकी शिक्षाए देकर भक्तोंको शिव सुख प्राप्त करवाते है। कितनेक अज्ञान पुरूष ऐसा स्थापन करते हैं कि, इस समयमें साधु तथा साध्वी नहीं है, वह असत्य है। यावत् श्री दुप्पहसूरि तक जिन शासन जय कारक वर्तेगा। ॥

कितनेक पुरुष प्रथम स्मशान वैराग्यसे दीक्षा अंगीकार करते हैं, परतु अन्तमें शास्त्रके अभ्याससे उत्तम वैराग्य प्राप्त करके आत्मस्वरूप जानते हैं। कितनेक ससारके दुःखसे त्रास पाकर दीक्षा अंगीकार करते हैं परन्तु अन्तमें सद्गुरूरूप पार्श्व

जाता है। बहुतसे मनुष्य सद्गुरू ? करते हैं, परन्तु उनोंकी भक्ति बहुमान करनेवाले थोडे होते हैं। कहा है कि, "गुरू दीपक गुरू देवता" गुरु वे ही हृदयमें रहे हुए अधकारका नाश करनेमे दीपक समान है। गुरू देवको भी बताते है, गुरूके द्वेषी नरकमें जाते हैं, जो सज्जन पुरुष होते है, वह किसी कालमें प्राण जाय तोभी गुरु निंदा नहीं करते। जो गुरूके उपासक होते हैं उनोंकी बुद्धि निर्मल होती है, जैसे ब्राह्मी औषधि खानेसे बुद्धि निर्मल रहती है, वैसे गुरू महाराजको-वदन, उनोंको भक्ति, करनेसे बुद्धि निर्मल होती है। वह गुरू निंदारूप हलाल किसी कालमें नहीं पीता, जो गुरू महाराजके सन्मुख भाषण करता है, और पिछेसे निन्दा करता है वह दुर्जन जानना। उसका मुख गुदासेभी खराब समजना। भक्ति से मुक्ति इस महा वाक्यमें बहुत अर्थका समावेश हुआह, गुरू महाराजको तीन खमासमण देकर सुखसाता पूछना, देवदेवीसे भी अधिक भक्ति गुरूकी करना।

यतः

गुरुदेव दोनु खडे, किसके लागु पाय॥
बलिहारी सद्गुरुतणी, जेणे धर्म बताय. ॥१॥
धर्माधर्म प्रकाशीने करता
बलिहारी सद्गुरु तणी
गुरू विनयी

गुरू द्रोही बहु पातकी, नवी लीजे जस नाम॥३॥
पंच महाव्रत पालता, धरता आतम ध्यान ॥
राग द्वेष निवारता, श्री सद्गुरू भगवान॥४॥
सद्गुरू वाणी तीर्थनां, स्नान करो धरी प्रेम॥
कर्म मेल दूरे करी, पामो शिवसुख क्षेम ॥५॥
द्रव्य गुण पर्यायनुं, स्वरूप कहे हित लाय ॥
सद्गुरू ते केम भूलिये, भावदया सुखदाय॥६॥
मात पिता पण स्हेल छे, गुरू प्राप्ति सुरफेल॥
पामी सद्गुरू देवने, तस पद पकज खेल॥७॥
गुरू आणा नवि लोपिये, गुरू आणाथी धर्म॥
गुरू आणाथी चालतां, नासे आठे कर्म ॥८॥
क्षण२ श्री सद्गुरू तणुं, नाम जपीने चित्त॥
महामंत्र गुरू नामनो, जपतां थइये पवित्त॥९॥
श्री सदगुरूने देखतां, नयणे हर्ष भराय ॥
सद्गुरू वाणी सुणतां, समकित रत्न ग्रहाय॥१०॥
गुरू भक्ति महाशक्ति छे, जेथी मुक्ति पमाय॥
सद्गुरू शरण ग्रही भवि, परमातम पद पाय॥११॥

सातनय, सप्तभगी, षड्द्रव्य, और नवतत्त्वके यथार्थ स्वरूपके सदुपदेश दाता, श्री सद्गुरुका महिमा अत्यत है। धर्म रत्नका स्वरूप कहनेवाले ऐसे सद्गुरु एकातसे आराध्य हैं। ऐसे गुरुको देखकर चित्तमें अत्यत हर्ष होता है। जिस हर्षका आकाशवत् अनुमान नहीं होता। ऐसे श्री सद्गुरु हैं, और उनोंकी सगतिसे यथार्थ आत्मतत्त्वका बोध होता है। गुरु प्रत्युपकारकी आशा नहीं रखते। सद्गुरुको देखके जिसको आनद होता है, वह ही इस दुहोंका यथार्थ भाव समज सक्ता है। और वे ही मुक्ति पद पाता है। दुनियामें कर्मके योगसे प्रत्येक मनुष्यकी प्रवृत्ति एक समान नहीं होता, और एक समान भाव नहीं होता। किसी मनुष्यको आबु अच्छे नहीं लगते, किसीको कैरी पर रुचि नहीं होती, कोईको शराब अच्छी लगती है वे दुधकी निंदा करता है। किसी मनुष्यको मोदक ठीक लगते है, और रोटी रुचती नहीं। एव श्री सद्गुरु उपर सर्व मनुष्योंका एक समान प्यार—प्रेम नहीं होता। कोइ सद्गुरुकी स्तुति करता है। तो वे ही सद्गुरुकी दूसरा निंदा करता है। दुसरोंसे निन्दा श्रवण करके प्राण जातेभी सद्गुरुका त्याग न करना। उलूक (घुवड) पक्षी सूर्यसे पराङ्मुख रहता है, अत एव सर्व मनुष्य उसका अनुकरण नहीं करते। दुर्जनोंका ऐसा स्वभाव होता है कि, उनोंको निन्दा किये विना नहीं चलता। परतु सज्जन तो गुणही ग्रहण करते हैं। गुरुभक्त जन गुरुकी निन्दा

करनेवाला पुत्रभी होतो वे शत्रु जानना। वीतरागकी आज्ञा विरुद्ध वर्तनेवालेको गुरु न मानना। जिनोंको देखके आत्माको हर्ष होता है, और जिनोंकी वाणी श्रवण करनेसे परम वैराग्य होता हो उनोंका संयोग पाकरभी यदि धर्ममें प्रवृत्ति न होतो जाननाकि, मैं महा पापी हूँ। श्री सद्गुरुको पाके प्रमाद छोडके, आत्मतत्त्व जानकर उसकी श्रद्धा कर, परभावका त्यागकर स्व स्वभावमें रमण करना। येही रहस्य है।

दुहा.

प्रकाशकमांहि सूर्य जेम, वलमांहि जेम जिन
ज्ञान मध्ये अनुभवी, पामी थाउं पीन ॥ २२ ॥

अग्निका प्रकाश, दीपकका प्रकाश, तारोंका प्रकाश, नक्षत्रका प्रकाश, ग्रहका प्रकाश, चंद्रका प्रकाश, ए सर्वमें सूर्यका प्रकाश विशेष है। तथा वलमें जिनेश्वर भगवान् विशेष है। वे बताते हैं।

भुजंग प्रयात छंद.

सुणो वीर्य वोलु विशालो विबुधो ॥
नरे बार योधे मळी एक गोधो ॥
दश गोधले लेखवो एक घोडो ॥
तुरंगेण वारे मळी एक पाडो ॥

दशे पच महिषे मदोन्मत्त नागो ॥
गजा पाचसे केसरी वीर्य त्यागो ॥
हरी वीशसे वीर्य अष्टापदेको ॥
दश लक्ष अष्टापदे एक रामो ॥
भला राम युग्मे समो वासुदेवो ॥
द्वितीय वासुदेवे गणी चक्रि लेवो ॥
भला लक्ष चाकि समो नागसूरो ॥
वली कोडी नागाधिपें इन्द्र पूरो ॥
अनत सुइन्द्रे मळी वीर्य जेतु ॥
टची अंगुली अग्रथी जिन ते तु ॥ १ ॥

बलमें तीर्थंकर महाराजका बल विशेष है। उनोंके समान अन्यका बल नहीं होता। वैसे बोधमें अनुभव बोध ज्ञान विशेष है। वे ज्ञान गुरुकी कृपासे प्राप्त कर सक्ते हैं। वे अनुभव ज्ञान पाके हे शिष्यों! तुम पीन अर्थात् पुष्ट हो जाओ।

दुहा

पाणी मध्ये तेल जिम, प्रसरे छे तत्काल ॥
ज्ञान मध्ये अनुभव, व्यापे छे सुख शाल ॥१२॥

पाणीका पात्र भरें और उसमें थोडासा तेल डालें तो—जैसे तेल सर्व पात्रमें विखर जाता है, वैसे ज्ञानमें अनुभवज्ञान है, वे सर्व वस्तुको यथार्थ रीतिसे अपना विषय कर लेता है। जिस २ वस्तुका जैसा २ स्वरूप होता है वैसा अनुभव ज्ञान से जाना जाता है। अल्पशास्त्राभ्याससेभी जो अनुभव ज्ञान होता है; वे वडे २ विद्वानोंसेभी विशेष है। महा पुण्यका उदय होता है तव अनुभव ज्ञान प्राप्त होता है। अनुभव ज्ञान प्रतिदिन वढता जाता है। जैसे—कोई कूप हो, उसका पाताल फूटे तत्पर्यंत खनन किया हो, पश्चात् उसमेंसे पानी नहीं तूटता—वैसे अनुभव ज्ञान नष्ट नहीं होता। स्वयंभू रमण समुद्रवत् अनुभव ज्ञान अगाध होता है। उसका पार—थाह नहीं पा सके। अन्तमें अनुभव ज्ञान केवल ज्ञानरूप लक्ष्मीको प्राप्त करवा देता है। तत्त्वका पुनः २ मनन, निदिध्यासन, स्मरण करनेसे अनुभव ज्ञान प्राप्त होता है। शुकवत् मुखपाठ मात्रसे कुछ आत्मकल्याण नहीं होता। अनुभव ज्ञानके दो भेद हैं। १ आत्मतत्त्व संवधी सम्यग अनुभव ज्ञान, और दूसरा आत्म तत्त्व संवधी असम्यग् अनुभव ज्ञान। जिनेश्वर भगवान कथित नवतत्त्व, षड्द्रव्य, सातनय, निक्षेपादिको आगमसे जाननेसे, तथा नित्यानित्यादि आठ पक्षको जाननेसे सम्यग् अनुभव ज्ञान प्राप्त होता है, और उसवे सम्यक्त्व की प्राप्ति होते क्रोधादि शत्रुओंका नाश होता है। पर पुद्गल अपना माननेकी जो मिथ्याबुद्धि अनादि कालसे थी, उसका नाश होता

है । आश्रवका स्वरूप जानकर आत्मा उसके त्याग पूर्वक संवर तत्त्व ध्याता है । आत्माके साथ अनादि कालसे लगे हुए आठ कर्म उनोंका नाश होता है । और आत्मा लोकालोक प्रकाशक स्वतः सिद्ध होता है । आत्म तत्त्वको अनेकांत रीतिसे जहांतक नहीं जाना वहांतक असम्यग् ज्ञान कहलाता है। असम्यग् ज्ञानसे परवस्तु की पहिचान यथायोग्य नहीं होती, और मिथ्यात्व रूप अंधकारमें पड रहना पडता है, तो चार गतिमें बार२ नानावतार धारण करके भ्रमण करना पडता है । जिसने आत्माको भली भाँति पहिचाना, मनन किया उसने सार ग्रहण किया । जग प्रसिद्ध अखबार पत्रे, अनेक ज्योतिष शास्त्रका अभ्यास किया, वैद्यक शास्त्रोंका पठन किया, एम ए एल एल बी. तक केल वणी प्राप्त करी, परन्तु उससे मुक्ति नहीं मिलती । जगतमें उससे वडपना माननेवालेने मिथ्या बडाई मारी ऐसा समजना । सच्ची बडाई तो आत्मतत्त्वके जाननेसे है । धनसे श्रेष्ठता मानना वे मूर्ख मनुष्योंका काम है और वैसे आदमीको जो साधु वर्ग बडा माने तो वे आपभी पुद्गलानंदी है, ऐसा समजना । कहा है कि —

उमर वधी तो क्या हुआ, घरडां गढा थाय ॥
आतमतत्त्व जाण्याविना, बहुजन मूर्ख कहाय॥१॥
आत्मा व्यापक मानता, एकान्ते जे लोक ॥
.एक ` ग्रहे जे,तस तप जप सवि फोक॥२॥

क्षण क्षण नाशी आतमने, ग्रहे एकान्ते जेह ॥
बंध मोक्ष अभावथी, थाये नहीं दुःख छेह ॥ २ ॥

आयु बढी, पुत्र पुत्रीकी वृद्धि हुई, करोडो रूपये इकट्ठे किये, राजा पादशाहसे सन्मान मिला, सर्व लोक वाह २ करे, चोवदार नेकी पुकारे, चार घोडोंकी फाइटन उपर बैठनेको मिला, अच्छे २ महल बनवाये, देश विदेश कीर्ति फैली, तोभी ऐसा मनुष्य मुक्ति नहीं पाता। परन्तु चार गतिमें अधिक वार भटकना पडता है। इस भवमें पुण्योदयसे पुद्‌गल समूह इकट्ठे करके आपको सुखी मानता है, परन्तु उसमें जन्मजरामरणके दुःख नहीं टलते। गरीव हो, पास धन न हो, परन्तु जो मनुष्य, सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमणादि धर्म क्रिया करता है, और आत्म तत्त्वको जानने भलीभांति प्रयत्न करता है, सद्‌गुरुका विनय करके तत्त्व ग्रहण करता है, वे पुरुष परमार्थ बुद्धिसे देखते वडा जानना। हिंसादिकका त्याग करके जिसने पचमहाव्रत उचरे है, ऐसे मुनिश्वर सबसे बडे-श्रेष्ठ जानना। अल्पज्ञानी वा विशेष ज्ञानी परन्तु पच महाव्रत धारण करनेवाला चौसठ इन्द्रसेभी बडा-श्रेष्ठ है, एव शास्त्रकार फरमाते हैं। कदापि श्रावक बहु श्रुत हो तो भी अल्पज्ञानी मुनिराजके बराबर नहीं आसक्ता। सबब कि, श्रावक तत्त्व जानते हुए भी कच्चा पानी पीता है, स्त्रीके साथ सो रहता है, असत्य बोलता है, छकाय जीवोंका नाश करता है, जानते हुए भी पुत्र उपर मोह रखकर ससाररूप कारागृहमें पड रहता

है । ऐसा श्रावक कदापि पंच महाव्रत धारी और अल्पज्ञानी मुनिराजके बराबर नहीं हो सक्ता । कंचन कामिनीका त्याग करना दुर्लभ है । कंचन कामिनीका त्याग करनेवाले मुनिराज चोसठ इन्द्रसेभी बड़े-श्रेष्ठ है । उसमेंभी भली प्रकार तत्त्वको जानने वाले मुनिराज विशेष उत्तम है । श्रावकका उपदेश असर नहीं करता । जैसे-वेश्या वेश्याको ब्रह्मचर्यका उपदेश दे उसका असर नहीं होता-वैसे श्रावक गृहस्थावासी उपदेश दे तो असरको लगे नहीं । गुरु महाराजके पास आगम सुनना श्रावकका कर्तव्य है, परन्तु उपदेश देना ये श्रावकका कृत्य नहीं है, और देतो जिनाज्ञा उत्थापक जानना । श्रावकको पढा हुआ साधु प्रशंसा करे तो उसकोभी प्रायश्चित लगता है । सद्गुरु महाराजके पास जीवादि तत्त्वका भली भाँति अभ्यास करके परभावका त्याग कर आत्म तत्त्वका ध्यान करना, वेही उत्तम मार्ग है । आत्माको एकान्तसे व्यापक माननेवाले मिथ्यात्वसे ग्रस्त जानना । आत्माको सांख्यके जैसे एकान्तसे नित्य माननेवालेभी सम्यग् ज्ञान नहीं पासक्ते । आत्माको एकान्तसे अनित्य माननेवाले भी बौद्धवत् मिथ्यात्वग्रस्त जानना । नित्य, अनित्य, सत्, असत् आदि पक्षोंसे षड् द्रव्यका स्वरूप जानना । पश्चात् उसकी श्रद्धा करना । आत्मद्रव्य अंगीकार करना, और विजाति द्रव्यके विषे द्‌न रखना । मन, वाणी, लेश्या और कायासे भिन्न अरूपी ... सच्चिदानंद रूप आत्मा है । आत्म स्वरूपका चिंतन

करनेसे जो सुख होता है, उसके सामने पौद्गलिक सुख कुछ हिसाबमें नहीं है ! पुद्गलमें सुख नहीं है। जैसे-कुत्ता हाड काटता है।तब खुदका स्वतः का-रक्त हाडमें उतरता है। उसको चूसकर आप ऐसा मानता है कि मैं हाडमेंस रक्त चूसता हूँ। वैसे ये जीवभी सुखकी भ्रान्तिसें पुद्गलमें प्रवृत्ति करता है, सुख ये आत्माका गुण है: परन्तु पुद्गलका नहीं। तो फिर पुद्गलसे सुख किस प्रकार मिल सके ? सर्व दृश्य पदार्थ पुद्गल है, उससे आत्मा भिन्न है, अनंत शक्ति युक्त है। इत्यादि जानकर आत्मानुभव प्राप्त करनेवाले जीव परमात्मपद पाता हैं।

दुहा.

रत्न विषे चिंतामणि, स्वयंभू समुद्र मांहि ॥
आतम अनुभव त्यु भवि,पामंता दु:ख नाहि॥१२॥

रत्नमें चिंतामणि रत्न बडा है। चिंतामणि रत्न चिंतित फल देता है, अन्य रत्न नहीं दे सक्ते। लवण समुद्र आदि सर्व समुद्रमें स्वयंभू रमण समुद्र बडा है-वैसे सर्व अनुभवमें आत्मानुभव बडा है। वे अनुभवकी प्राप्ति होते जन्म जरा मरणके दुःख नहीं रहते। आत्मा अपना स्वरूप गुरू पाससे सुने और तत्पश्चात् श्रद्धा करे।

प्रश्न-आत्मस्वरूप विना श्रवण किये क्या सहज ज्ञान नहीं होता ?

उत्तर-विना आत्मतत्त्व स्वरूप श्रवण किये

होता । आत्म तत्त्व ज्ञान प्राप्तिमें श्रवणेन्द्रिय निमित्त–कारण है । श्रवणेन्द्रिय रूप कारण बिना आत्म तत्त्वका ज्ञान नहीं होता । उस उपर हे शिष्य ! एक दृष्टांत कहता हू, सो सुन ।

एक राजा था, उसको एक प्रधानथा । राजाने एक दिन प्रधानसे पूछाकि, हे प्रधान ! तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति किससे हो ? प्रधानने कहा शास्त्र श्रवण करनेसे । राजाने कहा–बिना शास्त्र श्रवण किये तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति क्यों न होसके ? प्रधानने कहा बिना कारण के कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सक्ती । राजाने कहा तुमारा कथन सत्य कैसे माना जाय ? प्रधानने कहा–आपकी आज्ञा हो तो मेरा कथन सत्य कर बताउ। राजाने कहा जैसी तुमारी मरजी ।

राजाको एक छोटा पुत्र था । उसको राजाकी आज्ञासे प्रधान अपने घर लेगया । अपना कथन सत्य करने प्रधानने राजपुत्रको ऐसे भोंयरेमें उतारा कि, जिस भोंयरेमें सूर्यका प्रकाशभी न आसके और किसीका शब्दभी न सुनाई दे। वहा एक बकरीका बच्चा बाधा और छोकरेको रक्खा। वक्तसर एक स्त्री जाकर भोजन बिना बोले दे जाती । पुत्र वक्तसर खाता, सो जाता । बिना वे बकरीके अन्य किसीको न देख सक्ता । बकरीके जैसे वे पुत्र चलने लगा, बकरी में में शब्द करतीथी उसको देखकर कुमार भी में में शब्द बोलने शीखा । कुमार बारह वर्ष पर्यंत भोंयरेमें रहा । एक दिन प्रधानने उस कुमारको बाहर निकाला । कुमनुष्यको देखकर भडकने लगा। सूर्यको देखकर चमका,

और भयभ्रान्त हुआ। प्रधान कुमारको उठाके राज सभामें ले गया। हजारों मनुष्य सभामें थे वहा इस पुत्रको रखा। राजाने पूछा हे प्रधान! यह कौन है? प्रधानने कहा साहब! यह आपका पुत्र है। राजाने पुत्रको बुलाया तब ये पुत्र भयभ्रान्त होकर दो हात और दो पाँवसे बकरीके समान, भयसे भागने लगा और मुखसे बें २ शब्द करने लगा। सर्व सभाके मनुष्य हँसने लगे, वैसे २ ये कुमार भयभ्रात होता बें २ शब्द पुकारने लगा। राजाने प्रधानसे कहा हे प्रधान! इस पुत्रकी ऐसी अवस्था क्यों कर हुई है? प्रधानने सर्व व्यतिकर राजासे कहा। प्रधानने कहा राजाजी! इस पुत्रने भोंयरेमें केवल बकरीका शब्द सुना है, तो वे उतना ही बोल सकता है, और उसके जैसा आचरण करता है। वास्ते विना श्रवण किये तत्त्वज्ञान नहीं होता। राजाने ये वाता सत्य मानी तत्पश्चात् प्रधानने इस कुमारको भली प्रकारसे केळवणी दी, बारह वर्षमें राजपुत्र महा विद्वान् हुआ। वास्ते साराश येही ग्रहण करना कि, जिनेश्वर भगवत कथित सत् शास्त्रका सद्गुरुकी सेवा चाकरी करके श्रवण करना। अंतः एव तत्त्व ज्ञान प्राप्त होगा। और तत्पश्चात् आत्म तत्त्वका पर्यालोचन करते अनुभव ज्ञान प्राप्त होगा॥

दुहा

कुडछी भोजनमें फिरे, पण चाखे नहीं स्वाद॥
आतम अनुभव बिन जीव, पामे नहीं

कुडछी सर्व भोजनमें फिरती है, परन्तु उस भोजन का स्वाद वे कुडछी नहीं जान सक्ती । वैसे आत्मतत्त्वके सम्यग् अनुभव विना प्राणी तात्विक आल्हाद नहीं पा सक्ता । विना साध्य दृष्टिके व्यवहारिक ज्ञानसे करके आत्माको परम शांति नहीं होती । मैं कौन हूँ? इस प्रश्नके उत्तरमें जानना चाहिये कि मैं अनंतगुणका भोक्ता आत्मा हू, और व्यक्तिसे करके एक हूँ।मेरा कोई नहीं है, ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुणसे करके युक्त हूँ । धन, पुत्र, स्त्री मेरेसे भिन्न है, शरीरभी मेरेसे भिन्न है।यह शरीरभी वढे घटे या मोटा-ताजा हो, उसमें मेरी क्या हानी होती है?कोइ मनुष्य शरीरको लकडी मारे इसमें मेरा क्या बिगडा? अलबत मैं आत्मा हूँ, उसकोतो लकडी नहीं लगती है।कोई मनुष्य मुझे ऊच नीच कहे तो उससे मेरी कुछ हानी नहीं है । सबबकि, आत्मा तो ऊचभी नहीं है और नीचभी नहीं है । ऊच नीच ये आत्माका धर्म नहीं है । तो व्यर्थ वे शब्दसे खुशी अथवा दुखी कैसे बनु ? हे आत्मन् ! अपनेको कोई कपटी कहे तो मनमें विचारना कि, कपट माने अन्यको ठगना, ये गुण मेरेमें आवे तो मेरे धनभाग्य । सबब कि आत्मा ये स्वद्रव्य है, उससे पर अर्थात् अन्य पुद्गल द्रव्य है । उसका संबंध आत्माके साथ अनादि कालसे हुआ है। वे कर्मके आठ भेद हैं और उत्तर प्रकृति एकसो अठावन है । उसके साथ आत्मा परभावका कर्त्ता भोक्ता हुआ है, वे दूसरा २ ——— ठगनेकी अर्थात् उससे छूटनेकी बुद्धि यदि मेरेमें

प्रगट हो, और राग-द्वेषादि शत्रुओंको आत्म स्वभावमें रमण करके ठगुं तो सच्चा कपटी कहलाऊं, परन्तु रागादि शत्रु आत्माको ठगे तब मैं कपटी किस प्रकार कहलाऊं ? पर पुद्गलके साथ रमण करते मैं अन्यको मारूं, परधन हरण करूं, व्यभिचार करूं, असत्य बोलुं, क्रोध करूं, मान करूं, परको अपना मानु तो अलबत मैं कर्म शत्रुसे ठगाया। एव नहीं निश्चयसे-कह सके तब मैं ठगा गया। वास्ते दूसरे मुझे कपटी कहते हैं तो इस प्रकारका कपट मुझे प्राप्त हो, और अन्यको ठगनेकी बुद्धि उस रूप कपटका नाश हो। मुझे कोई पापी कहे तो उससे हर्ष मानना चाहिये। सबब कि शत्रुको मारे उसे पापी कहना। मेरे शत्रु मनुष्य नहीं है, सबब कि, प्रत्येक जीव मेरे स्वजातीय है। सिद्ध समान है। निश्चय नयसे देखने मे किसीका बुरा करने समर्थ नहीं है। मेरे सच्चे शत्रु चार गतिमें भटकाने वाले राग-द्वेष है, उनोंका नाश करूं तो मैं पापी कहलाऊं। उसके सिवाय अन्य प्राणीओंका नाश करनेसे नरक निगोदमें भटकना पडता है। कोई मुझे इर्ष्यालु कहे तो उससे मुझे क्या ? निश्चय नयसे देखते मैं रत्नत्रयीका भोक्ता, सिद्ध, बुद्ध, अविनाशी, पूर्णानद हूं। मेरेसे कोई बडा नहीं है मुझे किसी बातकी न्यूनता नहीं, है तो मैं किस उपर इर्ष्या करूं ? अलबत किसीपर नहीं। बाकी ससारमें एक दूसरेकी उत्कर्षता देखकर उसका अनिष्ट करनेकी बुद्धिरूप इर्ष्या करनेसे तो अनत कर्मकी वर्गणाओंसे आत्मा भारी होता है।

दूसरा विशेष धनवान हुआ उसमें तेरा क्या गया ? दूसरेको विशेष माल मिला उसमें तेरा क्या गया ? दूसरा विशेष विद्वान् हुआ उसमें तेरा क्या गया ? तु भी अनतज्ञानका धनी है। दूसरा तेरे से न बने ऐसी चितवना न करना। सबब कि, तेरा रोका कुछ रहेनेका नहीं, तेरा चिंतित् कुछ होनेका नहीं। निरर्थक मिथ्या क्यों विचारना चाहिये। तेरेसे दूसरेको मनोहर स्त्री पुत्र प्राप्त हुए उसस तु हाय ! मेरेसे यह बढ गया ऐसा चितवना मत। आत्मा तु क्यों अनिष्ट चिंतवता है ? उसने तेरेसे वृद्धि नहीं पाई, स्त्री पुत्रसे वृद्धी पाना येतो नाटकीके पुत्र समान जान। पुत्र स्त्री किसीके हुए नहीं, और होने वाले नहीं हैं। इस पुरुषको परभवका सबध अधिक होगा तो पुत्र, पुत्री अधिक हुए उससे क्या ! इर्षा करेगा तो तेरा चिंतित हो सकेगा ? नहीं होगा। तो व्यर्थ इर्ष्या क्यों करना ! सच्ची इर्ष्या तो कर्म प्रति करना चाहिये। वे इस प्रकार—मैं अनत शक्तिवान् हूँ, लोकालोकका ज्ञायक हूँ, अनत सुखका भोक्ता हूँ, तो भी कर्मरूप शत्रु मुझे मेरे गुण नहीं प्राप्त करने देता। मुझे उसके कथनानुसार चलना पडता है। मेरे ऊपर कर्म हुकम चलाता है। उसका में दास बन गया हूँ। कर्मकी शक्ति मेरेसे कम है, तो भी उसके वश रहेना पडता है। वे कर्मसे बने हुए साडे तीन मनके शरीरमें रहना पडता है। हड्डीया और रक्त भरित शरीरको उठाकर फिरना पडता है। कर्म जड है, और आत्मा चेतना युक्त है,

तो भी मैं उसका तानेदार बना हूँ। वास्ते कर्म उपर इर्ष्या करना चाहिये, और कर्माष्टका नाश करनेके अनेक उपाज योजना चाहिये। शरीरका तानेदार मैं कि, शरीर मेरा तावेदार ? नहीं२ मैं किसीका तानेदार नहीं हूँ। अब मैंने चिदानद स्वरूप जाना, शरीरको मेरे वश रखना चाहिये। इस मुताबिक इर्ष्या करनेवाला संसार समुद्रको तिरता है। कोई मुझे मूर्ख कहे तो उससे मुझे क्या ? जहातक मैंने मेरा स्वरुप जाना नहीं वहातक मैं मूर्ख ही हु। मेट्रिक-एन्ट्रन्स पास हुआ, एल. एल. बी, एम. ए आदि उपाधिया धारण की परन्तु मैं कौन हूँ ? मेरा क्याहै? मेरेसे अन्य कोन है ? मेरा स्वरप क्याहै ? इत्यादि विचार न किया वहातक मूर्खही हूँ।

कहाहै कि:—

मूर्खत्वंहि सखे ममापि रुचितं यस्मिन् यदष्टौ गुणाः
निश्चिन्तो बहु भोजनोऽत्रपमनानक्तं दिवाशायक.॥
कार्याकार्य विचारणेच बधिरो मानापमाने समः।
प्रायेणामय वर्जितो दृढवपु मूर्ख सुखं जीवति॥१॥

हे सखे ? मूर्खपना मुझे ठीक लगता है। सबब कि, मूर्खपनेमें आठ गुण हैं। १ चिता रहित। २ बहु भक्षण। ३ रहित। ४ रात्रि दिवस शयन करना। ५ कार्याकार्य

च.धेर । ६ मान अपमानके विषे सम । ७ रागरहित । ८ पुष्ट शरीर ये आठ गुण हैं। उसमेंसे कितनेक गुण मेरेमें है, अत'एव मैं मूर्खही हूं। मेरी परभवमें क्या गति होगी ? विना धर्मके अन्य कौनसा आधार है, आदि चितासे रहित हूँ। अत एव मूर्ख हूं। एक मूर्ख चिता रहित होता है, और पंडित चिंता सहित होता है। आत्म तत्त्व साक्षात् होते पश्चात् किसीभी प्रकारकी चिंता नहीं रहेती। मूर्खको तो अज्ञानसे हिताहितका भान नहीं होता। अतःएव चिंता नहीं होती। व्यवहारिक ज्ञानवालेको चिंता रहती है। और वे परभावमें रमण करता चिंता करता है। शरीर पडो, अगर रहो उसकी चिता ज्ञानीको नहीं रहेती ॥

प्रश्न-तब तो आप ज्ञानीने शरीर रोगी होते औषधादि उपचार भी नहीं करना चाहिये, और रोग होते चिंताभी न करना चाहिये।

उत्तर-जिससे पाप लगे ऐसी दवा ज्ञानी नहीं करवाते। परन्तु निरवद्य-दोष रहित हो तो करवाते हैं। शरीर होतो धर्मका साधन हो सक्ता है, वास्ते शरीर निरोगी करने प्रयत्न करना चाहिये। शरीर सुखाकारी होतो धर्म भली प्रकार साधा जा सक्ता है। वास्ते शरीर रोगी है तो दवा करवानेमें कोई बाधा नहीं है, और दवा करने सबधी ज्ञानीको किसी प्रकारकी चिंता नहीं होती। भक्तोंका येही कार्य है कि, सद्गुरुके रोगोंको निवृत करना कि, जिससे सद्गुरुजी शुद्ध रीतिसे स्वकीय आत्मस्वरूपमें तल्लीन

रहे। वैयावच ये गुण अप्रतिपाति है। उत्तराध्ययन सूत्रके सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययनमें उसका वर्णन किया है। मूर्ख बहुत भोजन करता है, ज्ञानी स्वात्म भोजनसे तृप्त होता है। परन्तु ज्ञानामृत रूप भोजनसे मूर्ख तृप्ति नहीं मानते। भोजन उपर लोलुपता हो अतएव संतोष न मानता होऊं और रात दिन खाउं तो मैं मूर्ख कहलाउं, उसमें आश्चर्य नहीं है। मूर्ख अतृप्त मन होता है। ज्ञानी आत्माका स्वरूप पहिचानकर ससारसे अपनेको भिन्न जानकर पौद्गलिक वस्तुकी इच्छा नहीं रखते और उससे अपनी तृप्ति भी नहीं मानते। परवस्तु उपरसे इच्छा उतर जानेसे किसी वस्तुकी चाहना नहीं रहेती। आत्मस्वरूप करके ज्ञानी सदा तृप्त रहता है। अज्ञानीको भोजनसेभी तृप्ति नहीं होती। जो॰ वस्तु आखसे देखता है उसकी इच्छा किया करता है। अनेक-नाना प्रकारके मिष्टान्न भोजनसे अज्ञानीकी इच्छा निवृत्त नहीं होती। ज्ञानीको सर्व अन्न उपर समान भाव रहता है। जो सुवर्ण और पत्थरको एक समान गिनता है वहभी एक प्रकारका मूर्ख है, जो वस्तु अपनी नहीं उसमें ममता बुद्धि वे दूसरा मूर्ख जानना। ज्ञानी सुवर्ण और पत्थर दोनोंमें पौद्गलिकत्व समान है, ऐसा जानकर दोनों एक समान गिनता है॥ ज्ञानीको पर वस्तु उपर ममत्व बुद्धि नहीं रहती। अपने आत्मामें रहे हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि प्रगटानेकी प्रवृत्तिमें बना रहता है

मूर्ख कार्यको अकार्य समजता है, और अकार्यको कार्य गिनता है। अथवा कार्य और अकार्य समान गिनता है। इस ससारमें मनुष्य भव पाकर मुक्ति प्राप्त करना वे कार्य है। उसको प्रथम गुण स्थानकवाला मिथ्यात्वी जीव अकार्य समजता है। वे मुक्ति साधक नहीं बनता और मुक्ति हेतु भूत धर्मानुष्ठान मूर्खको विष समान लगतें हैं। खाना, पीना, बगीचेमें फिरना, घर बनाना, धनोपार्जन करना, उसे अमृत समान गिनता है हितमें अहित बुद्धि और अहितमें हित बुद्धि मूर्खको होती है। देवदर्शन, सद्गुरु वदन तथा दर्शनको मूर्ख विषवत् गिनता है। गप्प मारना, निंदा करना, नाटक देखना, उसको अज्ञान दृष्टिसे अमृतवत् मानता है। अनुक्रमसे नाना भांति इच्छाए मूर्खके मनमें हुआ करती है। अधर्मीको धर्मी और धर्मीको अधर्मी एव स्वीकार करता है। जिनेश्वर भगवान् कथित नवतत्त्वके विना उसका धर्मीपना यथा योग्य नहीं कहा जा सक्ता। ज्ञानी धर्मी तथा अधर्मीको ज्ञान दृष्टिसे भली प्रकार देख सक्ता है। जैसे–स्वप्नावस्थामें सर्व शून्य मालुम होता है-वैसे ज्ञानीको सिवाय अपने आत्माके अन्य पदार्थोंमें आत्म तत्त्वके अभावसे सर्वत्र शून्यता मालुम होती है। अज्ञानी जिससे बध जाता है, वेही वस्तुसे ज्ञानी छूट जाता है। अज्ञानी जो जो सुनता है, उसका सम्यग अर्थ नहीं जान सक्ता। अतः एव वे बधिर समझना। मूर्ख मानमें और अपमानमें समानता धारण करता है। सबब कि वे मान और अपमानके स्वरूपसे अज्ञात

है। ज्ञानी मान और अपमानका स्वरूप जानकर आत्म तत्त्वमें स्थिर मतिज्ञावाला होकर मनमें ऐसा विचार करता है कि, मान और अपमान आत्माको नहीं है, तो फिर मैं हर्ष विषाद किस कारणसे करू ? एवं चिंतवना करके मान और अपमान शब्द भापक प्रति समभाव धारण करता है। मान अपमानसे आप हर्ष विषादास्पद नहीं बनता। अज्ञानसे मूर्ख अपने दिवस सुख पूर्वक निर्गमन करता है। और ज्ञानी ज्ञानावस्थासे भौतिक शरीरको वहन करते और भौतिक शरीरमें रहते हुएभी आपको पृथक् मानता है, तथा सच्चिदानद स्वरूपसे स्थित होकर स्वकाळ निर्गमन करता है, अज्ञानी मिथ्यात्त्व गुणस्थानकमें वर्तता है, और ज्ञानी चतुर्थादि गुण स्थानकमें वर्तता है। जहां तक देव, गुरु, धर्म तत्त्वको जाना नहीं, और उसकी यथार्थ श्रद्धा न हुई वहातक अज्ञानावस्था जानना। व्याकरण, अलकारादिक और एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करी, परंतु जिनोक्त तत्त्वोंका ज्ञातृत्व तथा उसकी यथार्थ श्रद्धा नहीं हुई; वहातक ज्ञानी किस प्रकार कहा सकें ? कोई मुझे बधिर कहे, अतःएव उससे मुझे क्या ? सबब कि, जो कानसें सुनता है, उसे बधिर कहने वाला आप स्वतःही असत्यवक्ता है। मैं आत्मा बधिर नहीं हूँ। कहा हैकिः—

हिताऽहित मनोरामं, वचः शोका वहं च यत् ॥
श्रुत्वाऽपि यो श्रुणुते, बधिरः स प्रकीर्तितः ॥

हितकर या अहितकर, मनको हर्ष दायक या

ऐसी वाणी श्रवण करते हुएभी जो सुनता नहीं, अर्थात् उसको क्षुद्र हर्ष शोकादिकके कारण रूप वाणीसे होनेवाले हर्ष शोकादिकको प्राप्त नहीं होता, वे वधिर है। यदि इस प्रकारका वधिरत्व प्राप्त हो जाय तो महत्पुण्यकी निशानी है। वधिरत्व तीन प्रकारका है,एक तो श्रोतेंद्रियके (कानके) नससे प्राप्त। दूसरा केवल क्षुद्र प्राणीके आहितकर वचन श्रवण करता है। हितावह वाक्य श्रवण नहीं करता, स्वार्थमें तत्पर होकर किसीके निंदाके वचन श्रवण करे, स्त्री कथा सुने, द्रव्य उपार्जन करनेकी बात श्रवण करे, परन्तु जिससे आत्महित हो ऐसी धर्मकथा सद्गुरुके पास श्रवण न करे, व्याख्यान सुनने न जावे, वस्तुत देखते ऐसे मनुष्य श्रवणेंद्रियका सदुपयोग नहीं करते। अत एव वे वधिर जानना। तीसरा सपूर्ण हितकर वचनोंको श्रवण करता है, आहितकर वचन कानमें पडे तोभी तत्प्रति लक्ष्य करने रूप श्रवणको जो नहीं करता, आहितकर वचनोंसें जिसके मनमें सकल्प विकल्प नहीं उठते, धर्मकथा श्रवण करनेहीमें जिसकी श्रवणेंद्रिय तृप्त है, राज्यकथा, मिथ्यात्वकथा, स्त्रीकथा, युद्ध कथा, विषय कथा श्रवण करनेमें जिसकी श्रवणेन्द्रिय तत्पर नहीं है। यदि ऐसा है तोभी वैसी कथा सुननेसेभी जिसका उस तरफ लक्ष्य नहीं है,वे तीसरा वधिर जानना। ये तीसरे प्रकारका वधिरत्व प्रशस्य है, अत एव कर्म प्रपच क्षय होता है। दुर्जन जन ज्ञानी पुरुषको नपुसक कहे उससे ज्ञानीके मनमें खेद नहीं होता। सबब कि नपुसकत्व

य आत्माका स्वभाव नहीं है । कर्म संयोगसे नपुंसकत्वकी प्राप्ति होती है । जिसको स्त्री तथा पुरुष दोनों भोगनेकी इच्छा होती है; वे एक । नपुसकको स्त्री भोगनेकी इच्छा है, तोभी अशक्ति आदि कारणसे स्त्री न भोग सके, वे दूसरा और नपुसकको विषय भोग इच्छाकी नष्टतासे स्त्री भोगरनेसे जो पराङ्मुखता वे तीसरा नपुसकत्व । ये तीसरा नपुसकत्व ब्रह्मचर्य पदकी प्राप्ति करवा दे कर कर्मका नाश करता है । शेष दो प्रकारके नपुसकत्वसे ससारकी वृद्धिही होती है । पुरुषत्व, स्त्रीत्व, और नपुसकत्वसे आत्मा भिन्न है । तो दूसरा मुझे नपुसक कहे तो मैंने क्यों शोक करना चाहिये ? दुर्जनोंका ऐसा स्वभाव हैकि,वे किसीकीभी उत्क्रान्ति नहीं सहन कर सक्ते । दुर्जन सत्यवादी पुरुषको मिथ्यावादी करना चाहता है, निष्कलंकीको कलंकी मानता है । इस लोकमें जो सच्चे सज्जन पुरुष है,वे निर्गुणी प्राणी प्रत्ये दयाभाव रखते हैं। दुर्जन पुरुष प्रथम गुणठाणे जानना । सम्यक्त्वकी प्राप्ति बाद सज्जनता प्राप्त होती है। दुर्जनके साथ मित्रता या किंचित्‌भी प्रीति करना समीचीन नहीं है । वैसेही उसके समीप रहनाभी इष्ट नहीं है । जैसे—संबध होते सुलगता हुआ कोयला जलाता है, और ठंडा हात काला करता है—तैसे दुर्जनभी सबध होते वारंवार खेद उत्पन्न कर दग्ध करके सर्व शरीर जलाता है, वास्ते दुर्जनको कोयलेकी ओपमा देनेमें आती है । किसी समय दुर्जन ये सज्जनोंको दुःखी करने, श्वान जैसा कहते है, ..

विचार करते हैं कि, इस संसारमें गुण रहित पदार्थ कोई नहीं है। जिस २ प्राणीमें जो २ गुण प्रशस्य हो उसको संपादन करनेसेही गुणी बना जाता है। श्वानमेंभी कितनेक गुण रहे हैं।

यत

वह्वाशी स्वल्प संतुष्ट:, सुनिद्रो लघु चेतन. ॥
स्वामिभक्तश्च शूरश्च, षडे ते श्वानजा गुणा ॥१॥

कम या अधिक खाकर संतोष मानना, घोर निद्रा होते भी सत्वर जागृत होना, स्वामी सेवामें तत्पर रहना, और शूरत्व। यह छे गुण श्वानमेंसेभी सज्जनता इच्छनेवालेने ग्रहण करना। ऐसा होनेसे कदाचित् श्वानके जैसे गुण अपनेमें देखकर किसीने श्वान समाना कहा, तो उसमें खेदकरनेका कोई कारण नहीं है। दुर्जन ज्ञानीओंको श्वानसम कहेंगे, अत. एव आप जो श्वान समान है वे मिटनेवाले नहीं। वे दुर्जन श्वानमें रहे हुए दोषोंको ग्रहण करनेवाले होते हैं। रास्ते जाते भले आदमीके उपर भूँसना, आप खावे और विशेष होवे तो अन्यको न खाने देना, नि सार हड्डीयोंको भी मुखमें लेकर फिरना, उल्टी करके पुन, उसे भक्षण करना इत्यादि श्वानके दोष दुर्जनोंमेंभी निवास करते हैं। दुर्जनके पास लक्ष्मी है, तो भी हाय! कम हो जायगी, ऐसा मानकर दान पुण्य नहीं करता, और सद्गुरूको तो भूँसने स- , निंदाके शब्दोंसे अपना दुर्जनत्व दिखाता है। जैसे कुत्ता

भली अगर बुरी वस्तु उपर मूत जाता है, वैसे—दुर्जन भले अथवा बुरे मनुष्यकी निंदा करने लग जाते हैं। विवेक रहित श्वान होता है, एवं दुर्जनभी माता, पिता, गुरुका मान करना, उनोंकी आज्ञा मानना, इत्यादिसे रहित होते हैं। एक श्वान दूसरे श्वानको देखकर भूँसने लग जाता है, तदवत् दुर्जन भी ज्ञानी, गुणवान्की ईर्ष्या करने लग जाता है। कुत्तेके समान दुर्जन वाणीसे ज्ञानीओंको दंश करता है। अहो! ये सब कर्मकी गति है। दुर्जन भी सत् पुरूषकी संगतसे सुधरकर सज्जन रूप बनते हैं। सद्‌गुरू समागमसे पापीओंके पाप नष्ट होते हैं। कपटी कपट रहित होते हैं। सद्‌गुरु समागमकी बलीहारी है। सद्गुरूकी संगति पार्श्वमणिके समान है।

॥ गीति ॥

सद्‌गुरु संगति पामी।
भव कोटी कृत कर्म क्षय होवे ॥
पार्श्वमणि संयोगे।
लोह कनक सुवर्णता वरे संगति जोवे ॥१॥
क्रोधादि षड् रिपुओ।
सद्‌गुरु संगतिथी दूरे जावे ॥

सद्गुरु वचनामृतथी ।
अजरामर पद आतममां आवे ॥ २ ॥

हजार बातकी एक बात है कि, मुक्ति पदके इच्छकोंने पंच महाव्रत धारी सद्गुरुकी संगति करना। ज्ञानीको कोई निर्देय कहे, अत एव ज्ञानीको खेद उत्पन्न नहीं होता । ज्ञानी पुरुष कभी निर्दयत्व अर्थात् अपनेसे भिन्न आत्माओंका धन माल लूट लेना, प्राणीओंको मार डालना, खाने पीने न देना, प्राणीओंके अंग छेदना, जीते प्राणीओंको काट डालना ये प्रथम जीव प्रति निर्दयत्व है । दूसरा मिथ्यात्व भावमें रमण करना, क्रोध, मान, माया और लोभादिमें मग्न रहेना, सद्गुरु सेवन न करना, जिनेश्वर भगवान के कथन किये हुए शास्त्रोंको न सुनना, साधु अथवा श्रावक धर्म अंगीकार न करना, अपने आत्माको रागादि दु ख देते हैं, चारगतिमें भटकाते हैं, उनोंके तरफ लक्ष्य न देना। अष्ट कर्म आत्माको लगे हैं, उनोंसे आत्माको न छुडाना, इस प्रकार वर्तना वे स्वमति निर्दयत्व जानना। ये दो प्रकारका निर्दयत्व त्याग करने योग्य है । जहा परप्रति निर्दयत्व होता है, वहा स्वमति निर्दयत्व होता है, ओर जहां स्वमति निर्दयत्व रहा है, वहा अवश्य पर प्रति निर्दयत्व जानना। स्वमति निर्दयत्व विशिष्ट मनुष्यको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती । सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुए बाद स्वमति निर्दयत्व नहीं रहता ।

जीव बाहरसे कीडी, मकोडी, मकोडा, कुथुए, जल-

चर, थलचर, खेचर आदि जीवों उपर दया करे, उनोका घात न करे, नाना विध क्रिया कष्ट करे, मिथ्यात्वी बाहरसे ब्रह्मचर्य व्रत पाले, परन्तु देव गुरु धर्मकी पहिचान सिवाय–(जेसे राख उपर लींपने समान) उसके सर्व तप जप फोगट जाते है। मिथ्यात्वी जीव चाहे जैसी जावदया पाले, परन्तु पहले गुणठाणे जानना। श्री जिनेश्वर कथित नवतत्त्व और षड्द्रव्यादिके ज्ञानसे स्वप्रति निर्दयत्व टलता है। जो जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे अपने आत्माकी कर्मक्षय करके–शुद्धि करता है, वे जीव अन्यके आत्माको भी बचाता है। वास्ते दो प्रकारका निर्दयत्व टले तो मै निर्दय न कहेलाऊ। जहा तक प्रमाद दशा और संसारमें सार मानकर मोह ममतासे रात्रि दिवस निर्गमन करता हुं वहा तक मै निर्दय हूँ ऐसा अर्थ ज्ञानी करते है। ज्ञानीको कोई पापी कहे तो ज्ञानी सानुकूल अर्थ ग्रहण करके खिन्न चित्त नहीं होते। जहातक मैं पाप स्थानकोंका सेवन करता हू, वहा तक मै पापी हूँ। ऐसा मानकर वह मुझे पापी कहता होगा' फिर पापी एक दूसरे प्रकारका भी है, रागादि शत्रुओंका नाश करने जिसकी बुद्धि हुई है, वे भी एक प्रकारका पापी है। वैसा मैं हू, ऐसी धारणासे कहा होगा, अतः एव मै मनमें कैसे अनिष्ट लावु! एव ज्ञानी विचारकर पाप कर्मसे निवृत्त होता है।

ज्ञानी ऐसा विचारता हैकि, मै अमूर्त हू, पुद्गल द्रव्य द्रव्य मूर्त है। मै स्वाभाविक हूँ, पुद्गल विभाविक है। मैं पवित्र

हूं , पुद्गल अपवित्र है । मेरा शाश्वत स्वभाव है, पुद्गल वस्तु अशाश्वत जानना । मेरा ज्ञानादिरूप है, पुद्गल वस्तु जड और अचेतन है । मेरा अचल स्वरूप है, पुद्गलका चलित स्वभाव है। एक रूपसे पुद्गल वस्तु नहीं रहती । पूर्ण गलनरूप पुद्गल है। ज्ञान,दर्शन और चारित्रमय मेरा स्वरूप है। पुद्गलद्रव्य वर्ण, गंध, रसादि रूप है, और मैं वर्ण, गंध, रस, स्पर्शसे भिन्न हूँ। मैं अजर हूँ, मैं भाषारूप पुद्गल रहित हूँ । ये भाषातो पुद्गल है । मैं काल द्रव्यसे भिन्न हूँ । मैं धर्मास्तिकायसे भिन्न हूँ, अधर्मास्तिकायसे अलग हूँ । मैं मेरे अनंत गुणसे करके परिपूर्ण हूँ । अपने गुण कर्मावरणसे तिरोभाव है, उनोंका आविर्भाव करना, वेही धर्म है।

स्वगुण रक्षणा तेह धर्म ।
स्वगुण विध्वंसनाते अधर्म ॥
भाव अध्यात्म अनुगत प्रवृति ।
तेहथी होय संसार छित्ति ॥ १ ॥

अपने गुणोंका रक्षण वेही धर्म और अपने गुणोंका नाश वेही अधर्म जानना । ये बात निश्चयनयानुसार है । अत एव व्यवहार धर्माचरण न त्यागना । व्यवहार धर्माचरण निश्चयनय को प्रगट करता है। श्री वीतरागोक्त नयानुसारसे स्वशक्त्यनुसार वचन और कायाकी एकाग्रतासे धर्मानुष्ठान सेवन करना

येही भव्यात्माओंको हिताशिक्षा है । शेष घर २ भटकनेसे विशेष क्या ? अनेक गुरूका शिष्य और बहु स्वामीकी स्त्री यह कभी इष्ट फल प्राप्त नहीं कर सक्ते । ये वाक्य अनुभवसे विचार देखना । एक गुरुसे अधिक गुरू करनेसे एक समान श्रद्धा नहीं रहती; और भक्ति बहुमानमें त्रुटी रहती है । सत्गुरू एकही धारण करना । अतःएव एक समान प्रीति रहती है, और भक्ति तथा बहुमानमें वृद्धि होती है । गुरूकोभी शिष्यकी समान श्रद्धा देखकर अंतःकरणसे तत्त्वोपदेश देनेकी रुचि जागृत होती है । रुचिसे शिष्य वे उपदेश धारण करके सुखेनवत् बहुत फल प्राप्त करता है, बाकी जहा तहा शिर घुसेडनेसे अतोभ्रष्टः ततोभ्रष्टः बनता है; और शंकास्पद मनवाला होता है । पुष्टि कारक औषधियाभी एक समयमें भक्षण नहीं की जा सक्ती। पुष्टिकारक एकही औषधि श्रद्धा पूर्वक सेवन करनेसे शरीर पुष्ट बनता है। वैसे एकही श्रीसद्गुरू कि, जिससे तत्त्व पायेहो, उनोंकोही सच्चे अंतःकरण पूर्वक तन, मन, धनसे अधिक गिनकर मरण पर्यंत सेवन करनेसे आत्मा सद्गति प्राप्त करता है । और दूसरोंकीभी गुणकी बात अंगीकार करना, परन्तु गुरु तो एकही श्रीसद्गुरु हृदयमें स्थापन करना और अहर्निश उनोंका ध्यान करना।उनोंके दोषों तरफ लक्ष न देना । श्रीसद्गुरुकी कोई पापी निंदा करे तो वे सुनना नहीं। इस जगतमें कर्मकी विचित्रतासे जीवोंकी एक समान दृष्टि नहीं होती । दूसरेने सद्गुरूकी निंदाकी, उस

निंदासे सद्गुरु उपरसे अपना प्रीतिभाव किंचित्भी न घटना चाहिये। अहर्निश उनोंके सदुपदेशका स्मरण करना, और व्यवहार तथा निश्चय नयानुसारसे आत्म स्वरूप जानकर स्वस्वभावमें रमण करना उसमेंही स्वहित रहा है।

दुहा

चर्म नयनथी देखतां, मुक्ति नहीं देखाय ॥
ज्ञान दृष्टिथी देखतां, मुक्ति करतल न्याय ॥२५॥

इस प्रत्यक्ष चर्म चक्षुसे देखते मुक्ति नगरी नहीं मालूम होती सबब कि ये प्रत्यक्ष चक्षुमें मुक्ति नगरी देखनेकी शक्ति नहीं है। ज्ञान दृष्टिसे मुक्ति नगरी देखी जा सकती है। सर्वार्थसिद्धि विमानके बारह जोजन उपर सिद्धशिला है, वे सिद्धशिला पिस्तालीस लाख योजन लंबी चौडी है। उसके एक योजनके २४ भाग करें, उसमे तेवीस भाग छोडकर चोवीसमें भाग के विषे आत्माका स्थापन होना उसका नाम मोक्ष है। नैयायिक अत्यंत भाव रुप मुक्ति मानते हैं, सबबकि, अद्वैत वादीके मतानुसार मोक्षस्थान भिन्न नहीं है, और मुक्तिमें जीवको बिलकुल ज्ञान न होना स्वीकार करते है। कितनेक ऐसा मानते हैं कि परमात्मा व्यापक है, और जीव उसका अंश है। जीव तत्त्व नष्ट होते परमात्मामें लीन होना उसकोही मुक्ति जानते हैं। कि- ईश्वरके पास सेवक बनकर रहना, उसको मुक्ति है, एव

स्वीकार करते हैं। परन्तु वे तत्त्व युक्तिसे विचारते तो सब झूंठ हैं। जिनेश्वर भगवंत कथित वेही मुक्ति सत्य है। सबबकि, सर्वज्ञ भगवानने ज्ञान दृष्टिसे सत्य कथन कियाहै। राग-द्वेषाभावसे कदापि असत्य कथन नहीं करते। श्री जिनेश्वर भगवानको कुछ मजहब बढानेकी इच्छा नहींथी। जिनोंको मत-मजहब बढानेकी इच्छा होती है, वे अठारह दोष रहित नहीं होते, और जिनेश्वर भगवत तो अठारह दोष रहित थे। वे अष्ट दश दोषका नीचे मुजब क्षय किया है॥

अन्नाण कोह मयमाणा।
लोह माया रइ अरईय निद्दा॥
सोग अलिय वयणाई।
चोरिया मच्छर भयाईं॥ १॥
पाणी वह पेम कीडा।
पसंगहासाय जर सईय दोसा॥
अठारस विपणठा।
नमामि देवाय देवत्तं॥ २॥

ये उक्त १८ दोष रहित हो, उसको देव जानना, उनोंका कथन सत्य जानना, उनोंकी आज्ञा प्रमाण करना। कैवल्य ज्ञान होते मुक्ति स्थान करतलवत् प्रत्यक्ष भासमान होता है। वे मु-

क्तिकी माप्ति धर्मध्यान और शुक्ल ध्यानके अवलंबनसे होती है। कर्मका नाश होनेसे मुक्ति होती है। क्षीणकर्मा जीव शाश्वत स्थानमें गति करता है।

श्लोक

क्षीण कर्मा ततो जीव, स्वदेहाकृति मुद्वहन ॥
उर्ध्व स्वभावतो याति, वन्हिज्वाला कलापवत्॥१॥
लोकाग्र प्राप्य तत्रासौ, स्थिरता मवलंबते ॥
गति हेतोर भावेन, धर्मस्य परतो गति ॥ २ ॥
कर्मणां प्रतिपक्षत्वात्, मुक्तेर्ज्ञानादि कारणं ॥
ज्ञानादिना विशुद्धिर्हि, रागादि क्षय दर्शनात् ॥३॥
रागादेश्चक्षयात् कर्म, प्रक्षयो हेत्व भावत ॥
तस्माद्रत्नत्रय हेतु, विरोधात् कर्मणाक्षये ॥ ४ ॥
कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्षो, भव्यस्य परिणामिन ॥
ज्ञान दर्शन चारित्र, त्रयो पाय प्रकीर्तित ॥५॥
तत्त्वप्रकाशक ज्ञान, दर्शन तत्व रोचक ॥
पापारंभ परित्याग, श्चा[illegible] ॥६॥
धर्म. [illegible] ॥
[illegible]

एतान्येव सजीवानि, पड्द्रव्याणि प्रचक्षते ॥
काल हीनानि पंचास्ति,कायास्तान्येव कीर्तिताः ॥८॥
जलवत् मत्स्य यानस्य, तत्रयोगाति कारणम् ॥
जीवादीनां पदार्थानां, सधर्म परिवर्णित· ॥ ९ ॥
लोकाकाशमभि व्याप्य, संस्थितो मूर्ति वार्जित· ॥
नित्यावस्थिति संयुक्त·, सर्वज्ञ ज्ञान गोचरः ॥१०॥
द्रव्याणां पुद्गलादीनां, अधर्मःस्थिति कारणम् ॥
लोकेऽभि व्यापकत्वादि, धर्मो धर्मोऽपि धर्मवत् २१
नित्यं व्यापकमाकाश, मवगाहैक लक्षणम् ॥
चराचराणि भूतानि, यत्रासंबाध मासते ॥२२ ॥
धर्माधर्मक जीवानां, असंख्येयाः प्रकीर्तिताः ॥
प्रदेशा सकल ज्ञानै, र्व्योमानन्त प्रदर्शकम् ॥२३॥
वर्तना· लक्षणः कालः, सस्वयंपरिणामिनाम् ॥
परिणामोपकारेण, पदार्थानां प्रवर्तते ॥ २४ ॥
रूप गंध रस स्पर्श, शब्दश्च पुद्गलः स्मृतः ॥
अणुस्कंध प्रभेदेन, द्विस्वभाव तया स्थितः॥२५॥
पृथिव्यादि स्वरूपेण, स्थूल सूक्ष्मादि भेदतः ॥

जीव मुक्ति जाते हैं । वे सबका जितना समय हो, उस के साथ वर्तमान कालका भी एक समय लेना । मतलब कि, तीन कालके जितने समय हो, वे सब समयको अनंत गुना करें इतने जीव एक निगोदमें हैं । वे सब जीव छोडकर एक लेवें, वह एक जीवके असख्यात प्रदेश हैं। वे एक २ प्रदेशमें अनंत कर्मकी वर्गणाए लगी है । वे सर्व वर्गणा छोडकर उसमेंसे एक वर्गणा ग्रहण करें, वे एक वर्गणामें अनंत पुद्गल परमाणु रहे है । वे बताते हैं । प्रथम परमाणुके दो भेद हैं । एक पृथक परमाणु और खंध के दो भेद हैं । एक जीव सहित खंध वे जीवको लगे हुए खंध जानाना, और दूसरे जीव रहित खंध वे घर, पट, दंड प्रमुख जानना । प्रथम जीव सहित खंधका विचार कहते है । दो परमाणु इकट्ठे हो तब द्वयणुक खंध कहलाता है, तीन परमाणु इकट्ठे हों तब त्र्यणुक खंध कहलाता है; एव यावत् असख्याता परमाणु इकट्ठे हों तब असंख्याताणुक खंध कहलाता है । और अनंत परमाणु इकट्ठे हों तब अनंताणुक खंध कहलाता है । इतने परमाणुओंका १ खंध कहावे वहांतक के खंध वे सर्व जीवको अग्रहण योग्य हैं; इतने परमाणुओंके खंधको कोई जीव ग्रहण न कर सके । परंतु अभव्य राशीके जीव ७४ में बोलमें है, उससे अनंतगुणाधिक परमाणु जब इकट्ठे हों, उस समयमें एक औदारिक (शरीर)को लेने योग्य-ग्रहण करने योग्य-वर्गणा हो, वे औदारिक वर्गणासे फिर अनंत गुणाधिकमय दालिये

इकठे हों, उस समयमें एक वैक्रिय (शरीर)को ग्रहण करने योग्य वर्गणा हो, और वैक्रिय (शरीर) वर्गणासे अनत गुणाधिक दालिये इकठे हों, तब एक आहारक (शरीर)को लेने योग्य वर्गणा हो, और आहारककी वर्गणाके अनत गुणाधिक दालिये इकठे हों, तब एक तैजसको ग्रहण करने योग्य वर्गणा हो, तैजसकी वर्गणासे अनंत गुणाधिक दालिये इकठे हों, तब एक भाषाको लेने-ग्रहण करने योग्य वर्गणा हो, तथा भाषाकी वर्गणासे अनत गुणाधिक मय दालिये इकठे हों, तब एक श्वासोश्वासको ग्रहण करने योग्य वर्गणा हो, और श्वासोश्वासकी वर्गणासे अनत गुणाधिकमय दालिये जब इकठे हों, तब एक मनको ग्रहण करने योग्य वर्गणा हो, यह सातवी मनोवर्गणासे फिर आठवी कार्मण वर्गणामें अनत गुणाधिक परमाणु जानना। ऐसे आत्माको एक२प्रदेशसे अनति कर्मकी वर्गणाए राग-द्वेषकी चीकनाईसे करके लगी हैं; अतःएव जीवके ज्ञानादिक गुणोंका आच्छादन हुआ है वास्ते जीवसे पुद्गल द्रव्य अनतगुना जानना। पुद्गल सक्रिय है।

पूर्वोक्त आठ वर्गणाएं जीवको अनंत कालसे लगी है। जिसमें एक औदारिक, दूसरी वैक्रिय, तीसरी आहारक और चौथी तैजस यह चार वर्गणाए बादर हैं, उसमें पाचवर्ण, दो गध, पांच रस और आठ स्पर्श यह वीस गुण जाणना। शेष चार वर्गणाए सूक्ष्म हैं, उसमें पाच वर्ण, दो गध, पाच रस और चार स्पर्श मिलकर सोलह गुण है। तथा एक प्रमाणुमें एक

चाना ? मेरा स्वभाव ऐसा है कि, आत्माके असख्यात प्रदेशमें ल
जाना ! मेरेसे जो मित्रता रखते हैं उनोंसे मैं कभी अलग न
होता। और तुम मित्रता नहीं रखते हो उससे क्या ?
तुमारेसे अलग रहु ?

आत्मा—अरे कर्म ! मै तेरे साथ मित्रता रखने नहीं चाहत
तेरी मित्रतासे तो मै चार गतिमें भटकता हूँ, छेदन, भेदन, ताड
और तर्जन आदि दु ख पाता, वेही तेरी साथ मित्रता रखने
फल है। अब तेरी मित्रता मुझे नहीं रखना है, जा, मेरे
दूर जा।

कर्म—हे आत्मा ! अब तू क्यों अधीर बना है, मेरी स
गति से जो दुःख तू पाता है, परन्तु उसमें तुझे एक बडा भा
लाभ है वे तू जानता है ?

आत्मा—तेरी मित्रता रखनेसे क्या लाभ है, सो बता ?

कर्म—आत्मा ! यदि तू मेरी संगति नहीं करता तो तू
ससार नगरीमें विचित्र पोशाक धारणकर फिर सक्ता ? मै हूँ वा
तक तू चार गतिमें फिर सकता है। वे क्यों नहीं याद करता

आत्मा—हे कर्म ! माफ कर, अब तेरी सगति न चाहिये
तेरी सगतिसे नाना प्रकारके जन्म धारण करके रौरव दुःख स
हनेसे मैं गभरा गया हूं। त तो दु ख देने वाला है।

कर्म—हे आत्मा ! तुझे मेरे उपकारोंकी कुछभी याद नहीं है
तू मेरे दोष देखता है। क्या मेरेमें कुछ गुण नहीं है ?

आत्मा—हे कर्म ! तेरे उपकारकी बात किसके सामने करुं ? मेरी अनंतशक्ति तेरे संगातिसे नष्ट हो गई है, और मुझे जडवत् बना डाला है। एक क्षण मात्रभी मैं सुखी नहीं होता। अवगुणरूप तेरी मूर्ति है। वास्ते कर्म ! अब तू मेरेसे दूर जा।

कर्म—हे ! आत्मा इतने दिनतक तू मुझे मित्र समान मानताथा, मेरेमें तल्लीन रहता था, अब तुझे क्या हुआकि, तू मुझे शत्रु मानता है, किस धूर्तने तुझे भरमाया है ?

आत्मा—हे कर्म वैरी ? मैं मोहरूप मदिराके पानसे इतना वक्त तुझे मित्र मानता था, परन्तु महा उपकारक श्री सद्गुरूने ज्ञानरूप औषधिसे मेरी मदिरा उतारी। अतःएव मैं शुद्ध दशावान् हुआ हूँ, और श्री सद्गुरुने मुझे विवेकरूप दिव्य चक्षु अर्पण किये हैं। उससे मैंने तेरा स्वरूप देखा तो सचमुच मालुम हुआ कि, तू मेरा मित्र नहीं परन्तु शत्रु है। ऐसा निश्चयसे जाना है। श्री सद्गुरुने मेरे उपर बडा उपकार किया है ! ऐसा धूर्त शिनात है कर्म ! तेरी धूर्तता अन्य कौन जान सके ?

कर्म—हे आत्मा ! तू मेरे साथ शत्रुता धारण करके सार निकालनेवाला नहीं है। भला, ठीक मेरी मित्रताइ छोडकर तू दुसरे किसके साथ मित्रता करने चाहता है ?

आत्मा—हे कर्म ! तेरे साथ शत्रुता रखे सिवाय मैं सुखी होने वाला नहीं हूँ, तेरी मित्रता छोडकर मैं स्वधर्म के साथ मित्रता

अग्निका क्या दोष है? अपनी भूलके लिये अन्य उपर क्रोध न करना चाहिये। हे आत्मा! तू पुल्लिंग होकर क्यों नपुसकके हाथमें गिरफ्दार हुआ है।

आत्मा—हे कर्म! तू अभी नपुसक होते भी तेने मुझे गिरफ्दार कर रखा है। उसका सबब यह है कि, तेरी सगति करनेसे मैं नपुसक बन गया हूं। मेरी शक्ति जाग्रत होने में तेरी स्वाधीनतामें नहीं रहूगा।

कर्म—हे आत्मा! जो कि मैं नपुसक हूं, तो भी मुझे जीतना बहुत कठिन है। मेरा सैन्य ऐसा है कि तुझे किंचित मात्रभी खिसकने न देगा।

• आत्मा—हे कर्म! तेरा सैन्य कौनसा है? वह मुझे बता।

कर्म—मेरा सैन्य अत्यन्त है। क्रोध, मान, माया, लोभ, कलह, ईर्ष्या, असत्य, चोरी और मैथुन इत्यादिसे बना हुआ मेरा सैन्य है।

भव्यात्मा—(सद्गुरुके पास जाकर विनय सहित) श्री सद्गुरु महाराज! आपकी कृपासे मुझे अब कर्म कटकका नाश करना है।

सद्गुरु—हे भव्यात्मा! कर्मकी सत्ता बलवान् है, बिना आत्माकी शक्ति प्रगट हुए कर्मका नाश नहीं होता। कर्म एसा बलवान् है कि, जो कर्मका नाश करने प्रयत्न करता है, उसको ... वे जीत लेता है। जब हृदयमें वैराग्य प्रगट होता है,

और सासारिक पदार्थ उपरसे ममता कम हो, मोह उतरे, तत्पश्चात् कर्मको जीतने समर्थ होता है।

भव्यात्मा—(दोनों हात जोडकर कहता है) श्री सद्गुरु महाराज! कर्मका नाश करके मुक्ति प्राप्त करनेका कृपा करके मार्ग बताइये कि जिससे जन्म, जरा, मरणादिकके दुःख नष्ट हो जॉय।

सद्गुरु—हे भव्यात्मा! प्रथम तो देव, गुरू और धर्मका स्वरूप जानना चाहिये। और उसके बाद जिनेश्वर कथित तत्वकी श्रद्धा करना और मिथ्यात्वको परिहरना, इतना किये बाद अन्य धर्म कृत्यका सेवन किया जा सक्ता है।

भव्यात्मा—हे करुणा निधान! देव, गुरू और धर्मका स्वरूप समजाओगे?

सद्गुरू—हे भव्यात्मा! एकाग्र चित्तसे श्रवण कर। अष्टदश दोष रहित हो, उसको देव मानना। वे अठारह दोषके नाम इस प्रकार हैं—

॥ (१) दानांतराय, (२) लाभांतराय, (३) वीर्यांतराय, (४) भोगांतराय, (५) उपभोगांतराय, (६) हास्य, (७) रति, (८) अराति, (९) सात प्रकारके भय (१०) जुगुप्सा, (११) शोक, (१२) काम, (१३) मिथ्यात्व, (१४) अज्ञान, (१५) निद्रा, (१६) अप्रत्याख्यान, (१७) राग, (१८) द्वेष ॥

यह अठारह दोष रहित हो उसको देव कहना, इसका

विशेष विवेचन करता हूँ।

दान देनेमें तथा लाभ लेनेमें और शक्तिका उपयोग करनेमें वैसे ही भोग उपभोग करनेमें जो जो बाधाए-अतराय या विघ्न आते हैं, वे कदापि देवमें नहीं होते।

हास्य-हास्य अर्थात् हास्य मुखचेष्टा, परमेश्वरको कदापि हास्य आता नहीं।

आशका—जिसको मुख है, उसको कदापि भी हास्य आता ही है। परन्तु परमेश्वर तो निराकार है। अत' एव हास्य कहांसे सभवे ? तो हास्य दोषका क्षय है अथवा नहीं है। वे कैसे जाना जा सके।

समाधान—यह बात अठारह दोष रहित समवसरणमें विराजित शरीरधारी तीर्थंकरकी अपेक्षासे जानना, श्री तीर्थंकर महाराजको मुख है, तोभी हास्य कदापि हो ही नहीं। अतः एव हास्य रहित देव जानना।

रति—पौद्गलिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे हर्ष करना, इष्ट वस्तुके सयोगसे आनदित होना वे रति देवमें नहीं होती। सबब कि, बाह्य पदार्थोंके सयोगसे उनोंको कुछ प्रयोजन नहीं है।

अरति-इप्सित-इष्ट पदार्थोंके सयोग वियोगादिसे देवको अरति-दु ख उत्पन्न नहीं होता।

भय-सर्व प्रकारके भय रहित सर्वज्ञ देव है, वास्ते उनोंको आयुध, गदा इत्यादि रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

जुगुप्सा-देवको नहीं होती। भले और बुरे पदार्थ उपर समभाव है, अतः एव प्रभुको जुगुप्सा नहीं होती।

शोक-आर्तध्यान और रौद्रध्यानका नाश होनेसे श्री वीतराग देवको शोक नहीं होता। वास्ते शोक रहित देव है।

काम—वेदका उदय प्रभुको नहीं होता, विबुध मनुष्य स्त्रीके लोलुपीको कदापि देव न कहेगा।

मिथ्यात्व—आत्मतत्वमें तत्व बुद्धि,सत्यको असत्य मानना, इत्यादि सर्व अज्ञानसे होता है। श्री वीतराग देव अठारह दोष रहित है, उनोंको कैवल्य ज्ञान समान सूर्य प्रगट हुआ है, अत. एव वे लोकालोकके भाव यथार्थ जानते हैं, उससे मिथ्यात्वका नाश होता है।

अज्ञान—मूर्छावस्था सहित हो वह देव न कहलावे, देवमें अज्ञान नही होता। देव अर्थात् प्रभु कैवल्य ज्ञान करके सहित हैं।

निद्रा—निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्धि।

यह पाच प्रकारकी निद्रामेंसे किसीभी एक प्रकारकी निद्रा देवमें नहीं होती। उससे उनोंको सोनेकी-सुलानेकी आवश्यकता नहीं होती। ये सब अज्ञान हैं। देवता निद्रा रहित स्वरूपकी स्थितिसे सर्वदा युक्त है।

अप्रत्याख्यान—देवके विषे अप्रत्याख्यानपना नहीं होता।

राग और द्वेष-इष्ट उपर राग-प्रेम या [illegible]

रिक जनोंको होता है, परतु देव राग-द्वेप रहित है। यदि देव एक उपर राग और दूसरे पर द्वेप करे तो वह भगवान् न वह लाते दोषवान् कहलाते हैं, राग-द्वेप वाला जीव माध्यस्थ नहीं हो सक्ता। जहा राग द्वेप है वहा अज्ञान और मोह निवास करते है। देवको तो सर्व जीवोंपर समानदृष्टि होती है।

आशंका—जिस देवमें राग नहीं है, वह देव अपने भक्ता-पर राग प्रेम नहीं रखेगा, और शत्रुको हानीभी नहीं करेगा। तव ऐसे देवका ध्यान करनेसे क्या फायदा होगा?

समाधान—हे मित्र! जिसको राग द्वेप होते है, उसको क्रोध, मान, माया, लोभभी होते है। और क्रोधसे अन्य जीवोंका घातभी करना पडता है, अपने-खुदके भक्तोंको सुखी और आपको नहीं माननेवालेको दु खी करना है, तो समानभाव देवमें किस प्रकार कहा जा सके? और दयाभी किस प्रकार कही जा सके? वास्ते करके देवताम राग द्वेप नहीं होते। देवके गुण पहिचानकर देवका जो स्मरण करते हैं, उसको तदनुसार वे गुणोंका लाभ हो सक्ता है। देवके उपर जो द्वेप करता है, वह द्वेपसे स्वत -आप कर्मसे करके भारी होता है। अग्निके पास जाने वालेकी उपर अग्निको राग नहीं है, और दूर रहनेवाले उपर द्वेप नहीं है। अग्निको सेवन करनेसे शीतवा जाडेका नाश होता है, और दूर रहनेसे [illegible] है। इसमें अग्निको कुछ राग-द्वेपका प्रयोजन नहीं [illegible]ाती कर्मका नाश करनेवाले भगवतको रागद्वेष नहीं

होतें, अतःएव वे वीतराग कहलाते है ।

स्वकृत कर्मानुसारसे भली अथवा बुरी बुद्धि उत्पन्न होती है । यदुक्त ।

श्लोकाः

यथा यथा पूर्व कृतस्य कर्मणः ।
फलं निधानस्थमिवाऽवतिष्ठते ॥
तथा तथा तत् प्रतिपादनोद्यता ।
प्रदीप हस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ १ ॥

इत्यादि अनादि कालसे आत्माकी अवस्थिति है । जीवोंको वनाने वाला कोई नहीं है, जीवोंको अनादि कालसे कर्म लगा है, और वह कर्मसे आत्मा चार गतिमें भटकता है, तथा परभावमें रमण करते स्वतः–आप कर्मका कर्ता वनता है ।

परवस्तुके सयोगसे आत्मा अशुद्ध परिणतिको धारण करके भव भ्रमण करता है । ईश्वर जीवोंको वनानेवाला नहीं है । हरेक जीवको आठ कर्म लगे हैं ।

१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयुष्य ६ नाम ७ गोत्रकर्म ८ अतराय कर्म । यह आठ कर्म हरेक जीवको क्षीर नीर सयोगवत् लगे है । जो कोई लोहेके गोलेको तपाता है, और गोला लालचोल होता है, और गोलेमें अग्नि व्याप्त हो जाता है [illegible]

कर्म लगता है। कर्म और आत्माके प्रदेश चर्मचक्षुसे दृग्गो
नहीं होते। जब विशिष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म तथा आ
त्माके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। कर्मका नाश होवे तो जी
परमात्मस्वरूप होता है। अर्थात् उत्कृष्ट स्वस्वरूपसे शुद्ध, निर्मल,
नत स्वशक्तिका स्वामी आत्मा उसको परमात्मा सिद्ध, बुद्ध, ईश्व
परमेश्वर, प्रभु, विभु, राम, रहिमान, क्रादर, महादेव इत्यादि नामो
बोला जाता है। प्रभु एक नहीं है परन्तु जितने कर्म क्षय करके मोक्ष
जावे वह सब परमात्मा कहलाते हैं, । परमात्मा एक नहीं पर
अनेक सिद्ध हैं। एकमें अनेक और अनेकमें एक एव सि
भगवनाकी मोक्ष स्थानमें अवास्थिति है । वह कदापि काल
मोक्ष स्थानमेंसे पुन यहा आनेवाले नहीं है। प्रवाहकी अपेक्षा
अनादि अनतमें भागसे सिद्धोंकी स्थिति है। श्री महावीर भग
वान इत्यादिकी अपेक्षासे सादी अनत भागसे स्थिति है। अ
तीत-भूतकालमें अनत जीव सिद्ध हुए। कोई तीर्थंकर पद पा
कर सिद्ध हुये, कोई सामान्य केवली होकर सिद्ध हुए। तीर्थंक
भी अतीत भूत कालमें अनत हुए हैं, और महाविदेह क्षेत्रमें वर्त
मान कालमें सिद्ध होते हैं। अनागत-भविष्यकालमें सिद्ध हो
वेंगे तो भी सब ससारी और अभव्य जीवोंकी कदापि मुक्ति
होनेवाली नहीं है। श्री तीर्थंकर भगवानको देव जानना। श्री
तीर्थंकरकी वाणी ३५ गुणवाली होती है, ३४ अतिशय करके
युक्त श्री अरिहत देव भगवान होते हैं।

मोक्षकी स्थिति अनादि कालसे है । द्रव्यार्थिक नयकी अ-
पेक्षासे लोक और अलोक शाश्वत है, जीवतत्त्व और अजीव त-
त्त्वादि नवतत्त्वभी शाश्वत हैं । साराश यह है कि नवतत्त्वके
किसी दिन स्वस्वरूपसे नाश होने वाला नहीं है । लोकके विषे
नरक स्थानभी आतिरिक्त है । देवलोक और मनुष्य लोककाभी
लोकाकाशके अदर समावेश होता है । तत्परवी विशेष [illegible]
सग्रहणी, क्षेत्रसमास और जंबुद्वीपपन्नतिसे जानना । इस दुनि-
यामें अनत जीव है । कोई ऐसा कहता है कि [illegible]
रमाके अंश है, उनोंका कथन असत्य है । [illegible]
स्वरूप है, मोक्ष स्थानको नहीं मानते वह [illegible] हैं ।
सिद्धशिलाके उपर मोक्षके जीव हैं [illegible]
अथवा सिद्ध भगवन्तादि कहते हैं [illegible]
भोग करते हैं ।

प्रश्न—सिद्ध भगवंतोंके [illegible]

नाना प्रकारके वेश्याओंने किये हुए नृत्य देखकर भिल्ल अति सुखको प्राप्त हुआ, इतनाही कहना कॉफी है कि पौद्‌गलिक सुखमें किसी प्रकारकी त्रुटी नहीं रही। एक दिवस भिल्लके मनमें ऐसा विचार आया कि "मैं मेरे स्वजनोंको मिलु।" वह बात राजाको कह कर आप जिस अरण्यमें रहता था वहा आया। सर्वे भिल्लोंको मिला करा सब भिल्लजन इकठ्ठे हुए। तब वह भिल्ल उससे पुछने लगे कि भाई! यह तो बतावो कि, वहा तुमको सोनेका सुख कैसा था?

जगत्में दृष्टान्तके अभावसे कहने लगा कि सोनेका तो बहुत ठीक था। सोनेके लिये हथेली बताकर कहा गोल गोल चकचेसी वस्तुए थीं, जिसका सपूर्ण वर्णनभी नहीं हो सके' वैसे दृष्टान्त देकर समजायाभी न जावे वैसे सिद्धका सुख मुखद्वारा नहीं कहा जा सक्ता, और सज्ञासे समजाया भी नहीं जा सक्ता। सिद्धके जीव अनत सुखका उपभोग कर रहे है, आठों कर्मका क्षय हो जानसे सिद्धके जीवोंको आठ गुण उत्पन्न होते हैं। यत

नाणच दंसण चेव, अव्वाबाह तहेव सम्मत्त॥
अक्खय ठिई अरुवी, अगुरुलघु वीरिय हवइ ॥१॥

ज्ञानावरणी कर्मका नाश होनेसे अनन्तज्ञान स्वभाविक गुण सिद्धको उत्पन्न हुआ है। दर्शनावरणीय कर्मका क्षय होनेसे अनत दर्शन प्रगट हुआ है, ज्ञान यह आत्माका विशेष उपयोग है और दर्शन यह आत्माका सामान्य उपयोग है। साकार उप-

योग ज्ञान है और दर्शन निराकार उपयोग रूप जानना । वेद-नीय कर्मका नाश होनेसे बाधा रहित अव्याबाध सुख उत्पन्न हुआ है । तीनों कालके देवताके और मनुष्यके पौद्‌गलिक सुख इकट्ठे करें तो वहभी एक अश आत्मिक सुखके बराबर–तुल्य नहीं है; पौद्‌गलिक सुख विभाविक है और आत्मिक सुख स्वा-भाविक है । मोहनीय कर्मके नाशसे क्षायिक सम्यक्त्व सिद्ध भ-गवानको है, चारोंगतिका आयुष्य सादि सान्त भागे है । आ-युष्य कर्मका नाश होनेसे सिद्ध परमात्माको अक्षय स्थिति प्राप्त भइ है । मोक्षमें गया हुआ सिद्धका जीव किसी कालमें पुन ससारमें नहीं आता, मोक्ष गति प्राप्त हुए पश्चात् जन्म धारण नहीं करना पडता ।

प्रश्न—मोक्षमें गये बाद सिद्धके जीव यहां किस सबबसे नहीं आते ? मनुष्यके दुःख काटने यहां आवे तो उनोंको किसी प्रकारकी हरकत है ?

उत्तर—सिद्धके जीव मोक्षमें गये बाद निष्क्रिय होते हैं, मुख्य तो आत्माका गुण अक्रिय है, आत्मा तो केवळ पुद्‌गलके सयोगसे सक्रिय था। किंतु मोक्षमें गये बाद आत्मा निष्क्रिय अर्थात् क्रिया रहित होता है । अतःएव वे यहा नही आ सक्ते । और अन्योंके दुःख देखकरभी यहां आनेकी उनोंकी मरजी नहीं होती । निष्क्रिय–क्रिया रहित सिद्धके जीव गमनागमन नही कर सक्ते; क्योंकि इच्छाका नाश हुआ है । गमनागमन करनेवालेको सिद्ध भगवान न कहना ।

प्रश्न—अनत शक्तिके मालिक सिद्ध भगवान हैं, तो फिर क्या ! उनोंमें यहा आनेकी शक्ति नहीं है ?

उत्तर—सिद्धके जीव आत्माकी अनत शक्तिके मालिक हैं। सिद्ध अपने गुणोंके स्वामी हैं किंतु पुद्गलके स्वामी नहीं है। पुद्गल चल है। पुद्गल चलन शक्तिवाला है आत्मा चलन शक्ति रहित है, अर्थात् अचल है, गमनागमन रहित है। कर्मका क्षय और पुद्गल अर्थात् द्रव्यका सबध तुटे पश्चात् आत्मा स्व-स्वरूपका भोक्ता बना, और निष्कलकी-कलक रहित हुआ। चलनेका स्वभाव पुद्गलका था वह दूर हो गया। अत'एव सिद्धके जीव अचल हुए। गमनागमन करनेकी शक्ति रहित सिद्ध भगवान हैं। परद्रव्यकी शक्ति सिद्धोंको न होनेसे किसी प्रकारकी क्षति नहीं है। अत एव सिद्धके-मोक्षके जीव यहां नहीं आ सक्ते। राग-द्वेष रहितको गमनागमनका प्रयोजनही नहीं है, अत'एव उनोंका गमनागमन बिलकुल नहीं है। आकाशके अवगाही प्रदेश मोक्षस्थानमें स्व स्वरूपसे रहे हैं और अनत सुख भोगवते है।

चिडीयां एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाती है, तदनुसार सिद्धके जीव एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमनागमन नहीं कर सक्ते। स्वामी दयानद सरस्वती कहते है कि-जीव मुक्तिमें कितनाक समय निवास किये पश्चात् वापिस लौट आता है। सुज्ञों ! यह वाक्य वध्यापुत्र समान है, जो कर्मसे निर्वृत्त होते

हैं वह लौटकर पुनः ससारमें नहीं आते। श्रीमद् भगवद्गीतामेंभी कहाहै कि—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमंपदम् ॥

जो स्थान प्राप्त करके जीव वहासे पुनः कदापि ससारमें नहीं आता, उसको मुक्ति अथवा परमपद कहते हैं। यतः

दु खजन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरा पाये तदनन्तरापायादप वर्ग ॥

न्याय दर्शन.

मिथ्याज्ञानके नाशसे दोषका नाश होता है; रागादिकं दोष के नाशसे ससारमें जो प्रवृत्ति होती है वह नाश पाते—नष्ट होते दु.खकाभी नाश होता है।

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः

वे दुःखादिकका अत्यंत नाश होते आत्मा अपने स्वज्ञान, दर्शन और चारित्रादि गुणोंसे करके प्रकाशक होता है। और शरीर सबंध दूर कर सिद्धशिलाके उपर निवास करे उसका नाम मोक्ष अथवा अपवर्ग है। सिद्ध भगवान अनत सुखका उपभोग करते है; क्यों उनोंके सर्व दुःखोका नाश हुआ है। एक अनन अवगाहना सिद्धकी है। परस्पर इकट्ठे मिलकर रहे हैं। रागादिकका नाश होनेसे सदाकाल नित्य और एकत्र रहनेमें किसीभी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। एकही स्थानमें सिद्धके सर्व जीवोंका स-

मावेश किस प्रकार हा सके ? यह शका अधिक समय स्थित नहीं रहती। सबबकि, एक कमरे (Rcom) में एक दीपक करें और वहां दूसरे हजारों दीपक प्रगटावें तो भी दीपकोंका प्रकाश परस्पर बाधा न पहुचाते उतनी जगहमे रह सक्ता है, परतु किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। इस मुताबिक मुक्तिके जीव निराकार होनेसे मोक्षस्थानमें निराबाध अवस्थामें रह सक्ते हैं। वहा रहते हुएभी सिद्ध भगवन लोकालोकके भावको जानते हैं। कोई भी वस्तु उनोंके दृगोचर नहो ऐसी नहीं है।

छठवा नाम कर्मका क्षय होनेसे सिद्ध भगवनोंने अरूपी पद प्राप्त किया है। पाच शरीर, छ सघयण, छ सस्थान और तीन योग इत्यादिकसे सिद्ध भगवान रहित हैं। गोत्रकर्मका नाश होनेसे सिद्ध भगवतको अगुरुलघु गुण उत्पन्न हुवा है, और अतराय कर्म के नाशसे अनतगुण स्वसत्तासे स्थित थे वह प्रगट भये हैं, तथा अनत शक्ति युक्त हुए हैं। दानातरायके नाशसे अनत गुण दान सिद्धके आत्माको प्राप्त हुआ है। लाभान्तरायके नाशसे अनत गुण लाभकी प्राप्ति हुई है। भोगान्तराय और उपभोगान्तराय तथा वीर्यान्तरायके नाशसे स्वाभाविक गुण प्रगट हुए हैं। सिद्ध परमात्माके एक एक प्रदेशमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य इत्यादिक अनत गुण प्रगट हुए हैं, सिद्धके जीवको एक समयमें अनतानत नवीन २ ज्ञेयकी वर्तना रूप

पर्यायका उत्पाद व्यय हो रहा है। और गुण तो ध्रुवता ध्रुव पनेही वर्त रहा है। अतःएव समय समयमें अनंत सुख सिद्ध परमात्मा भोगवते है।

आठ पक्ष करके सिद्धका स्वरूप।

सिद्ध भगवानको ज्ञानादिक अनंतगुण प्रगटे है जो कि, शाश्वतपने वर्तते हैं। इस लिये सिद्धको नित्य कहें तथा वे ज्ञानादिक गुण सिद्धको प्रगटे है, उसके विषे अगुरू लघु पर्याय रूप उत्पन्न होना और नष्टताको प्राप्त होना, यह समय समयमें हानि वृद्धिरूप हुआ करता है। अतःएव सिद्ध अनित्य भी कहावे। श्रीऋषभदेव स्वामी तथा श्रीमहावीर एवं एक एकका ग्रहण करते तो सिद्ध एक है, इससे सिद्धको एक कहें, तथा गुण पर्याय और प्रदेश वे सब सिद्धको अनेक है। वास्ते अनेकभी कहलावे। यह सब गुण पर्याय तथा प्रदेश अनेक है, उसमें भी अपने स्वरूपसे वे एक वर्तते है। वास्ते अनेकमें एक सिद्ध कहें।

एक सिद्धमें अनत गुण अनंत पर्याय तथा असख्यात प्रदेश है। अतः एव अनेकभी कह सक्ते है। सिद्ध सत्‌भी है और असत्‌भी है। सिद्धमें स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावसें करके सिद्ध सत् है, और परद्रव्य, परक्षेत्र परकाल और परभाव करके सिद्ध असत् हैं। सिद्धके स्वद्रव्य ज्ञानादिक गुण जानना। स्वक्षेत्र वे—अपने असख्यात प्रदेशरूप

क्षेत्रकी अवगाहना ग्रहण करके रहे हैं—जानना । तथा स्वकाल वे अपने अगुरुलघु पर्याय सर्व गुणोंमें सिद्धको हानि वृद्धिरूप उत्पन्न होना और नष्ट होना हुआ करता है, वह। तथा स्वस्वभाव वे अपने गुण पर्याय जानना। सिद्ध परमात्मा यह स्व द्रव्यादिक चारोंस करके सत् है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावका सिद्धमें असत्पना है, अत,एव सिद्ध असन् जानना, अन्यथा नहीं।

सिद्धमें वक्तव्य, अवक्तव्य, पक्ष कहते हैं। परमात्मा सिद्ध भगवतमें अनत गुण हैं, उसमेंसे जितने गुण केवली भगवानके कथन करनेमें आवे वह वक्तव्य जानना। जो मुखद्वारा कथन करनेमें न आवे वह अवक्तव्य जानना। यह आठ पक्षसे सिद्धका स्वरूप बताया है।

अब सप्तभंगीसे सिद्ध परमात्माका स्वरूप कहते हैं।

प्रथम स्याद् अस्ति, स्याद नास्ति, स्याद् अस्ति, नास्ति स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद् नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति नास्ति युगपद् अवक्तव्य।

१ स्याद्—यह अव्यय है और अनेकांतका द्योतक है। अनेकांतपने सर्व अपेक्षासे करके आस्तिता उसको स्याद् अस्ति कहनेमें आता है, अर्थात् सिद्धका स्वद्रव्य वे—अपने गुण पर्या-

यका समुदाय–स्वक्षेत्र वे–अपने असंख्यात प्रदेश–स्वकाल वे समय समयमें उत्पाद और व्ययकी वर्तना रूप जानना और स्वभाव वे–अनत ज्ञान पर्याय, अनंत दर्शन पर्याय, अनंत चारित्र पर्याय, अनत अगुरु लघु पर्याय, अतःएव सिद्धको आस्तिपना है। वास्ते स्याद् अस्ति यह प्रथम भागा जानना।

२ स्याद् नास्ति—सिद्धमें परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव यह चारोंका नास्तिपना है, अतःएव स्याद् नास्ति नामक द्वितीय भागा जानना।

३ स्याद् आस्ति नास्ति–स्वगुणसे करके आस्ति है, और परगुणसे करके नास्ति है; यह दो भागे सिद्धको एक समये है, जिस समयमें सिद्धको स्वगुणकी आस्ति है वेही समयमें सिद्धको परगुणकी नास्ति है। अतःएव सिद्धको अस्ति नास्ति यह दोनों एक समयमेंही है। यह तृतीय अस्ति नास्ति नामक भागा जानना।

४ स्याद् अवक्तव्य–सिद्धमें स्याद्र आस्ति नास्ति यह दोनों भांगे एकही समयमें हैं, परन्तु स्याद् अस्ति इतना वचन कहते असंख्याता समय लगता है। तत्पश्चात् स्याद् नास्ति नामक दूसरा भागा कहा है। अर्थात् जिस समयमें आस्तिभागा कहा उसही समयमें नास्तिपना कहनेमें न आवे और नास्ति कहनेमें आवे तो उसही समयमें आस्तित्व नहीं आया। उस समयमें अस्ति कहते नास्तिपनेका मृषावाद लगे, किंवा नास्ति कहते अस्तिपनेका मृषावाद लगे। एवं एक समयमें दोनों शब्द नहीं बोले

जा सके, अर्थात् अकथ्य है । एक अक्षर बोलते असख्यात समय लगता है । तत्पश्चात् दूसरा अक्षर बोलनेमे आवे उसके लिये अवक्तव्य भांगा जानना ।

५ स्याद् अस्ति अवक्तव्य–सिद्धमें अपने अनत गुणोंका अस्तित्व है, वहभी वचन द्वारा अकथ्य है। सिद्धके अनत गुण अस्तित्वपने हैं तो भी अवक्तव्य है। वास्ते स्याद् अस्ति अवक्तव्य नामक पाचमा भांगा जानना ।

६ स्याद् नास्ति अवक्तव्य–दड, चत्र, पट, घट, पुण्य, पाप, आश्रव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, आकाशास्तिकाय इत्यादि अनत गुण पर्यायका सिद्धमें नास्तित्व रहा है। वह वचन द्वारा अकथ्य है। सिद्धमें अनत–परधर्मका नास्तित्व रहा है तोभी अवक्तव्य है । वास्ते स्याद्नास्ति अवक्तव्य नामक छट्ठा भागा जानना ।

७ स्यादस्त्येव स्यान्ना स्त्येव स्यादवक्तव्यम्–सिद्धमें स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षासे स्वगुणोंका स्वसमयमें आस्तित्व रहा है। वे ही समयमें परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावको परद्रव्यका नास्तित्व रहा है। एक समयमें वे दोनों धर्मका युगपत् प्रतिपादन करना असमर्थ है । युगपत् स्वरूप कथन करनेमें वचन द्वारा अस्तित्व नास्तित्वका एक समयमें ग्रहण न हो, वास्ते स्याद् अस्त्येव स्याद् नास्त्येव युग पत् अवक्तव्य नामक सातवा भागा कहा है ।

नित्या नित्यादिककी सप्तभगीसे सिद्धका स्वरूप कथन करते है । स्याद् नित्य, स्याद् अनित्य, स्यात् नित्यानित्य, स्याद् अवक्तव्यम्, स्याद् नित्यं अवक्तव्यम्, स्याद् अनित्य अवक्त व्यम्, स्याद् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्यम् ।

१ स्यात् नित्यं अनेकातपनेसे सर्व अपेक्षासे नित्य और शाश्वत भी वर्तता है उसको स्यात् नित्यनामक भांगा कहना । श्री सिद्ध भगवानको ज्ञान गुण होते भी पर्याय अनंत, दर्शनका गुण है तोभी पर्याय अनत, चारित्र गुण है। तोभी पर्याय अनत, एव अनत गुण पर्याय हैं, तो भी वे सिद्धमें सदाकाल शाश्वत नित्यपने वर्तते हैं । वास्ते स्यात् नित्य भांगा प्रथम जानना ।

२ श्री सिद्ध परमात्मा अनन्त होतेभी उनोंको पर्याय प्रगट हुए हैं, वह एक एक पर्यायके विषे अनत सामर्थ्य पर्याय रूप ज्ञेयकी वर्तना समय समयमें हो रही है । अर्थात् अभिनव पर्या-यका उत्पन्न होना, और पूर्व पर्यायका विनाश होना है। वास्ते सिद्धमें यह अनित्यपना जानना । अतःएव स्यात् अनित्य रूप दूसरा भांगा कहा ।

३ सिद्धमें पूर्वोक्त पर्याय नित्य है और सामर्थ्य पर्याय अनत है, नित्य पर्याय और सामर्थ्य पर्याय यह उभय पर्याय सिद्धमें एक साथ रहे हैं । वास्ते स्यात् नित्यानित्य नामक ती-सरा भांगा जानना ।

४ सिद्धमें नित्य और अनित्य यह उभय भागे एक सम-

यमें हैं। परन्तु स्यात् नित्य इतना कहते अनंत समय लगे, तत् पश्चात् स्यात् अनित्य भागा कहलावे। नित्य कथन करनेके समयमें अनित्य नहीं आया, और अनित्य कथन करनेके समयमें नित्यपना न आया। एकही समयमें उभय भांगे कथन करनेमें नहीं आते। वास्ते अवक्तव्य नामक चोथा भांगा सिद्धमें जानना।

५-६ सिद्धमें अनत है, । परन्तु पर्याय नित्य हैं, वहभी अवक्तव्य हैं। अनत सामर्थ्य पर्याय अनित्य हैं, वहभी अवक्तव्य हैं।

७ सिद्धमें नित्या नित्यपना युगपत् एक समयमें है, परन्तु वचन द्वारा अकथ्य है। वास्ते स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य नामक सातवा भांगा जानना।

फिर सिद्ध परमात्माके एक अनेककी सप्तभंगीयां करनी। यथा-स्यात् एक, स्यात् अनेक, स्यात् एकानेक, स्यात् अवक्तव्यम्, स्यात् एक अवक्तव्यम्, स्यात् अनेक अवक्तव्यम्, स्यात् एकानेक युगपत् अवक्तव्यम्। इस प्रकार एकअनेककी सप्तभंगीसे सिद्धका स्वरूप जानना।

फिर सिद्धमें स्यात् सत्य, स्यात् असत्य, स्यात सत्यासत्य, स्यात् अवक्तव्यम्, स्यात् सत्य अवक्तव्यम्, स्यात् असत्य अ-[illegible]यम्, स्यात् सत्यासत्य युगपत् अवक्तव्यम्[illegible]

[illegible] सप्तभंगीसे सिद्धका स्वरूप

सिद्धमें फिर स्यात् भव्य स्वभावम्, स्यात् अभव्य स्वभावम्, स्यात् भव्याभव्य स्वभावम्, स्यात् अवक्तव्यम्, स्यात् भव्य स्वभाव अवक्तव्यम्, स्यात् अभव्य स्वभावम् अवक्तव्यम्, स्यात् भव्याभव्य स्वभाव युगपत् अवक्तव्यम् । इस प्रकार भव्य और अभव्यकी सिद्धमें सप्तभगी जानना ।

फिर सिद्धमें स्यात् गुण, स्यात् पर्याय, स्यात् गुण पर्याय, स्यात् अवक्तव्यम्, स्यात् गुण अवक्तव्यम्, स्यात् पर्याय अवक्तव्यम्, स्यात् गुण पर्यायम् युगपत् अवक्तव्यम्। इस प्रकार गुण पर्यायकी सप्तभगी सिद्धमें जानना ।

नामसे सिद्धको एक कहना और सिद्धको क्षेत्रसे असख्य प्रदेशी कहना । सिद्धको एक॰ प्रदेशमें अनत गुण प्रगट हुए हैं । असख्यात प्रदेश है और गुण अनत हैं । वास्ते असंख्य, अनत कहना । सिद्ध परमात्माके एक एक गुणमें अनतानंत पर्यायकी वर्तना रूप जानना । वह अनंत अनंत भग कहना । सिद्ध परमात्माके एक एक पर्यायमें अनत धर्म प्रगट हुआ है । वह अनत अनत धर्म रूप भग जानना ।

प्रथम सिद्ध ऐसा नाम वह नाम सिद्ध–शरीरमेंसे तीसरा हिस्सा घटाकर दो हिस्से शरीर मुताबिक आत्मप्रदेशका घन करके आकाश प्रदेशोंको अवगाहना रही है–वह स्थापना सिद्ध– जो तेरहवें और चौदहवें गुण स्थानकमें वर्तते है, वह द्रव्यसि सिद्ध जानना । आठ कर्मोंका नाश करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र,

वीर्यादि अनत गुणोंसे करके निर्मल ऐसे स्व अनत गुण जिसको आविर्भाव रूप हुए हैं, ऐसे सिद्धशिलाके उपर मोक्षमें विराजित परमात्माओंको मात्र सिद्ध कहते है। सिद्ध भगवान् अपने आत्माको अनतज्ञान, अनतदर्शन और अनत चारित्र गुण रूप दान देते हैं, वास्ते सिद्ध परमात्माको दानी भी कहना। ससार रूप नगरमें भ्रमण करते सवर रूप रत्नकी खाण पाकर, आठ कर्म दूर कर, अनादि कालसे आच्छादित ऐसे और सत्तासे रहे हुए ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप धनका लाभ मिलाया है, वास्ते उनोंको लाभवान् कहना। सिद्ध भगवान–दानातरायके नाशसे दानी और लाभातरायके नाशसे लाभवान्–हुए हैं। इन्द्रिय सुखरूप विकारके भोगसे सिद्ध परमात्मा रहित है, इस लिये सिद्धको अभोगी–भोग रहित जानना। मन, वचन, और कायाके योग रहित सिद्ध भगवान है। सिद्धोंको वेद रहित जानना, क्यों कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद [illegible] है।
सिद्धके एक एक [illegible]

वर्तनासे पलटते हैं। इस लिये वे समय समयमें नया नया अनत सुख भोगते है।

सिद्धको ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य यह चार गुण तथा अव्याबाध, अमूर्त, अनवगाहक यह तीन पर्याय नित्य है। इस लिये नित्य स्वभाव कहना। एक अगुरु लघु पर्याय सिद्ध भगवानको सब गुणोंमें उपन्न होना तथा विनाश रूप हानि वृद्धि करता है, इसलिये सिद्धका स्वभाव अनित्यभी जानना। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे सिद्धका नित्य स्वभाव और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अनित्य स्वभाव है। स्वज्ञानादिक गुणके कर्ता तथा भोक्ता सिद्ध है। किन्तु पौद्गलिक वस्तुके कर्ता तथा भोक्ता सिद्ध नहीं है। जो स्वभाव पलटता है उसको भव्य स्वभाव कहते हैं, और जो स्वभाव नहीं पल्टता उसको अभव्य स्वभाव कहते है। यह दोनों प्रकारके स्वभाव सिद्धमें है। सिद्ध भगवानको जो ज्ञान, दर्शन और चारित्रादि अनत गुण प्रगटे हैं, उनोंका किसी कालमें नाश होनेवाला नहीं है, अर्थात् वह किसी कालमें पलटेंगे नहीं। सिद्धमें एकही अगुरु लघु पर्याय करके अनत गुणमें हानि वृद्धिरूप व्ययोत्पाद उत्पत्ति और नाश होता है, उसकी अपेक्षासे सिद्धमें भव्य स्वभाव जानना। ग्राहक और अग्राहक स्वभावसे करके मुक्त सिद्ध भगवान है। सिद्ध परमात्माने शुक्ल ध्यानाग्निसे सर्व कर्म जलाकर भस्म करके, अपना स्वरूप ग्रहण करके लोगके अग्रभागमें जाकर अनत

सुख ग्रहण किया है। अपने गुण ग्रहण किये हैं। इस लिये सिद्धमें ग्राहक स्वभाव जानना। प्रथम संसारमें मोहनीय कर्मके वशमें थे, तब समय समयमें अनत कर्म दलिक ग्रहण करतेथे, अभी उससे पराङ्‌ मुख हुए हैं। वास्ते उसकी अपेक्षासें अग्राहक स्वभाव जानना।

सकल कर्मका क्षय करके सिद्ध परमात्मा अपना स्वस्वरूप प्रगट कर लोकके अतमें सादि अनतवे भागे तथा प्रवाहकी अपेक्षासे अनादि अनतवे भागे जो आकाश रूप प्रदेश अवगाही-ग्रहण करके रहे हैं, वहासे किसी कालमें वे प्रदेश छोडकर अन्य प्रदेशमें जाना नहीं है। इस लिये स्थिर स्वभाव कहना। जो अनत गुण सिद्धमें प्रगटे हैं उनोंका किसीभी कालमें क्षय-विनाश होनेवाला नहीं है। उसकी अपेक्षासे सिद्धको स्थिर स्वभाव जानना। सिद्धमें पर्यायका समय समयमें पलटनेका स्वभाव है, अर्थात् पर्यायसे हानि वृद्धि होती है। वे सिद्ध परमात्माका अस्थिर स्वभाव जानना। क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोभ रहित, हास्य रहित, अरति रहित, राग रहित, द्वेष रहित, मोह रहित, मिथ्यात्व रहित, पांच प्रकारके शरीर रहित, छ सघयण रहित, मन रहित, वचन रहित, लेश्या रहित, निद्रा रहित, काम रहित और इन्द्रिय रहित सिद्ध भगवान जानना।

सिद्ध परमात्मा निराकार हैं, अक्षय हैं, अखड हैं, अक्षर, अनक्षर, अकल, अगम, अमल, अलख, लोकालोक ज्ञायक, स्व-

द्रव्यवंत, सच्चिदानंद स्वरूप, स्वक्षेत्रवंत, स्वकालवत, स्वभाववंत, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे नित्य, पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अनित्य, गुण पर्यायसे नित्यानित्य, स्वसत्तावत, परसत्ता रहित, पच द्रव्यसे भिन्न, स्वस्वभावके कर्ता, परस्वभावके अकर्ता, अपर, एक, अनेक और अनत गुण करके विराजमान सिद्ध परमात्मा हैं। एक सिद्धका स्वरूप जिसने जाना है, उसने अनेक सिद्धका स्वरूप जाना है। यह स्याद्वाद मार्गका रहस्य है।

यतः एको भावः सर्वथायेन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः इति स्याद्वाद मजर्यां। अनेकात मार्गकी वलिहारी है। विना अनेकातमार्गावबोधके सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। आप्त प्राणित सिद्धातोंको पढना, गुणना तथा उनोंके वचनानुसार धर्ममें प्रवृत्ति करनेसे मोक्षस्थानकी प्राप्ति होती है।

हे शिष्य ! सिद्धका यत् किंचित् वर्णन देवतत्वके प्रसंगसे कहा है। देव और तीर्थकरको एकही जानना। और देवकोही अरिहंत कहे जाते है।

प्रश्न—अरिहत कहां तक होंगे तथा कबसे अरिहंत भगवान होने लगे है ?

उत्तर—हे भव्यात्मा ! अरिहत भाविष्यमें अनतकाल पर्यंत होंगे। और अनादिकालसे अरिहत भगवत होते हैं। तथा वर्तमान समयमेंभी अरिहत भगवान हैं।

प्रश्न—वर्तमान समयमें अरिहंत भगवान कहा है ?

उत्तर—हे भव्य ! अभी अरिहंत परमात्मा महाविदेह क्षेत्रमें है। पांच भरत, पांच ऐरवत और पाच महाविदेह यह पदरह क्षेत्रमें तीर्थंकर भगवान उत्पन्न होते हैं। यह पदरह क्षेत्र अढाईद्वीपमें है। अढाईद्वीपके बहार तीर्थंकर भगवान उत्पन्न नहीं होते। पाच महाविदेहमें सदाकाल चौथा आरा वर्तता है। और वहा तीर्थंकर भगवानभी सदाकाल वर्तते हैं, विचरते हैं। पांच भरत, पाच ऐरवतमें सदाकाल शाश्वत नहीं वर्तते। इस भरतक्षेत्रमें चौवीस तीर्थंकर होगये अभी पचम आरा-कलियुग है। अत एव तीर्थंकरका विरह है।

तीर्थंकर भगवान बारह गुण करके युक्त होतेंह। उनोंके नाम -

अशोक वृक्ष सुरपुष्पवृष्टि।
दिव्यध्वनिश्चामरमासनच ॥
भामडल दुदुभिरात पत्र।
तत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥

१ अरिहत ऐसा नाम है वह नाम अरिहंत ।

२ अरिहत भगवानकी स्थापना करना वह स्थापना अरिहत ।

३ बीस स्थानकमेंसे चाहे उस स्थानकका आराधन कर तीर्थंकर होनेका कर्म उपार्जन किया, तबसे द्रव्य अरिहत जानना।

४ केवल ज्ञानकी प्राप्तिसे समवसरणमें बैठे; देशना दें, तब भाव अरिहंत जानना ।

> नाम जिणा जिण नामा ।
> ठवण जिणा पुण जिणंद पडिमाओ ॥
> दव्वेजिणा जिण जीवा ।
> भाव जिणा समवसरणथ्था ॥ १ ॥

नाम जिन, स्थापना जिन, द्रव्य जिन तथा भाव जिन यह चार निक्षेप अरिहतकेही जानना ।

प्रश्न—चार निक्षेपोंमेंसे भाव जिनका निक्षेपा सच्चा है; वास्ते वह मानना । अन्यकों कैसे मानें ?

उत्तर—स्वस्वरूपसे चार निक्षेप सत्य है । असत्य नहीं कहे जा सक्ते ।

जिज्ञासु—स्थापना–तीर्थंकरोंकी मूर्ति बनानेमें आती है, वह न तो बोलती है और न चलती है, तो फिर उसको माननेसे क्या लाभ हो ?

सद्गुर—हे मित्र ! अभी तक आपने सद्गुरुद्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया । कालिक सूरि नामक कसाईको श्रेणिक रा जाने कुएमें डाला था, वहां उसने मिट्टीके भैंसे बनाकर मार डाले । अत एव उसको जीवहिंसा लगी उसका कारण क्या है वे तो कहो।

जिज्ञासु—सत्य भैंसेकी अपेक्षासे-बुद्धिसे उसने मार डाले उससे उसको जीवहिंसा लगी । उसमें क्या असत्य है ?

सद्गुरु—आपके कथन मात्रसेही स्थापना निक्षेपकी सिद्धि होती है। सबबकि मिट्टीके भैंसे बनाये वह न तो पचाद्रय जीव थे, और हलते चलतेभी नथे, मिट्टी के भैंसे न घास खाते थे तथा न पानी पीते थे, न मूतते थे, तोभी मिट्टीके भैंसमें सत्य भैंसेका आरोप करके उस कालक सूर कसाईने मार डाले और उसको पाप लगा। इस मुताबिक श्री जिनेश्वर भगवानकी प्रतिमा बो लती नहीं है, चलती नहीं है, हलती नहीं है, वैसे उपदेश भी देती नहीं है । इतना होते भी जिनेश्वर भगवानकी प्रतिमामें भा व जिनेश्वरकी बुद्धिका आरोप-स्थापन कर, जिनेश्वरकी प्रतिमाको मानते, पूजते और भक्ति करते इष्ट फलकी प्राप्ति होती है और मोक्षकी प्राप्ति करवा देनेमें निमित्त भूत होती है ।

जिज्ञासु—जैसे-पत्थरकी गाय दूध नहीं दे सक्ती वैसे-पत्थरकी प्रतिमाभी क्या फल दे सके ?

सद्गुरु—खीर खीर (दुधपाक) एव गणना करते कुछ खीरकी प्राप्ति नहीं होती । इसही प्रकार अरिहत अरिहत एव नाम देनेसे कुछ अरिहत नहीं आ मिलते, तब अरिहत ऐसा नाम देनेसे क्या लाभ ?

जिज्ञासु—वाहजी, वाह ! ! अरिहंत ऐसा नाम देनेसे अनंत भव नष्ट होते हैं, और वर्तमान, भूतकाल तथा भविष्य कालमें होनेवाले अनत तीर्थकरोंका स्मरण होता है, उनोंके गुणोंका स्मरण होता है, वे गुण प्राप्त करनेकी इच्छा होती है । इस लिये अरिहंत नामका स्मरण करना चाहिये ।

सद्गुरु—जब श्री अरिहत इस शब्दसे अरिहत भगवानका स्मरण होता है, तो उनोंकी प्रतिमासे भी उनोंका स्मरण होना यह युक्ति युक्त है । अरिहत ऐसा शब्द पुद्गल है और अरिहत भगवानकी प्रतिमा भी पुद्गल पिंडकी है । अरिहतका नाम देनेसे तथा अरिहत भगवानकी प्रतिमासे साक्षात् भाव तीर्थकरका स्मरण होता है । सूर्य इतना शब्द बाचते अथवा बोलते साक्षात् सूर्यका स्मरण होता है, यह बात अनुभव सिद्ध है;तो फिर अरिहत परमात्माकी प्रतिमाको मानते, पूजते इष्ट फलकी प्राप्ति हो इसमें किंचित् मात्रभी सदेह नहीं है । जैसे–अरिहंत ऐसा नाम देनेसे पापका नाश होता है । वैसे–अरिहंतकी प्रतिमामेंभी साक्षात् तीर्थकरका आरोप करके मानते, पूजते साक्षात् तीर्थकरको मानने–पूजने समान फलकी प्राप्ति होती है ।

एक भिलकी कथा ।

पाडवोंके समयमें धनुविद्या शिखनेको एक भिल्ल द्रोण गुरुके पास गया, और धनुर्विद्या शिखलानेकी प्रार्थना करी; तो उसको धनुर्विद्या शिखानेका द्रोणगुरुने अस्वीकार किया । पश्चात् वह भिल्ल अरण्यमें गया । एक द्रोण गुरुकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर साक्षात् द्रोणगुरुकी बुद्धिके आरो पसे मानने-पूजन लगा, नमस्कार करने लगा, अत एव उसको धनुर्विद्याकी प्राप्ति हुइ । एक दिन द्रोणगुरु साथ अर्जुनके वनमें गयेथे वहां वृक्षके बींधे हुए पर्णोंको देखे उसकी ऐसी चातुरी देखकर द्रोण गुरुने पूछाकि-हे भिल्ल ! तू धनुविद्या कहा शिखा ? भिल्लने कहाकि द्रोणगुरुके पाससे । द्रोणगुरुने फिर कहा तेरे द्रोणगुरु कहा है ? भिल्लने अपनी पर्णकुटीमें द्रोणगुरुको ले जाकर मिट्टीकी मूर्ति बताकर कहा कि यह मेरे द्रोणगुरु है । इनोंके पाससे मैं धनुविद्या शिखा हूं ।

द्रोणगुरु तथा अर्जुन आश्चर्य चकित होकर कहने लगे कि, गुरुके उपर भक्ति और बहुमान रखनेसे मिट्टीके द्रोणगुर भी उसकी इष्ट फलकी सिद्धिके लिये हुए ।

मूर्खो ! विचार करो कि मिट्टीके द्रोणगुरमें भाव द्रोण गुरुभी कुछ थे ? जी नहीं । इतना होते भी भावसे द्रोणगुरुकी बुद्धिसे मानते-पूजते भिल्लको इष्ट फलकी प्राप्ति हुई ।

इसही प्रकार जो मनुष्य अरिहंत भगवानकी मूर्तिको भगवानकी बुद्धिसे मानते—पूजते हैं, उनोकी सेवा—भक्ति करते हैं, उनोंको शिव सुखादिक सुखकी प्राप्ति होती है। इसमें संदेह नहीं है। श्री तीर्थंकर भगवान ३४ अतिशय और ३५ गुणोंसे करके युक्त होते हैं। कैवल्य ज्ञानसे लोकालोकके भावको जानते हैं। भव्य जनोंके हितार्थ समवसरणमें बैठकर देशना देते है, बारह पर्पदा भरते है। प्रभुके प्रातिहार्यसे देवता, मनुष्य, और तिर्यञ्च ये सब अपनी अपनी भाषामें समजते हैं। सबनके संशय दूर होते हैं। पुन्यवंत जीवोंको तीर्थंश्वरके दर्शन होते है, भगवानकी वाणी मेघध्वनि समान गर्जना करती है। षट् द्रव्यका स्वरूप तथा नामादि निक्षेपोंका कथन करते है, और उत्पाद, व्यय, ध्रुव यह त्रिपदीका भी कथन करते है। नैगमादि सात नय और सप्तभंगीकी प्ररूपणा करते है। जीवा जीवादि नवतत्त्वका स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे वर्णन करते हैं। श्राद्ध, और श्रमण धर्मका कथन करते हैं। द्रव्य गुण पर्यायका स्वरूप प्ररूपते है। द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग यह चार अनुयोगसे व्याख्या करते है। नित्यानित्यादि आठ पक्षसे करके श्री तीर्थंकर महाराजा षट् द्रव्यका स्वरूप बताते है।

दिगंबर—केवली देशना नहीं देते। केवल उनोंके मस्तकमेंसे ॐकारका ध्वनि निकल्ता है, और उसको देवता दुंदुभी में लेकर समजाते हैं।

सद्गुरु—श्री केवली भगवानको मनयोग, वचनयोग और काययोग यह तीन योग हैं। वचन योगसे देशना देते है, वह युक्तियुक्त बात सिद्ध करते है।

ॐकार शब्दमेंसे रूपी अरूपी पदार्थका स्वरूप न निकल सके, देवता अवधीज्ञानी हैं, वे लोकालोकके स्वरूपका-भावोंका वर्णन न कर सके। मुखसे बोलनेकी शक्ति है तोभी तीर्थंकर भगवान क्यों न बोले? और जब-बोले नहीं तब ॐकारकी ध्वनि कैसे करें? उसको माध्यस्थतासे विचारो। श्रीतीर्थंकर भगवान देशना-उपदेश देते है, मुखसे बोल्ते किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती। केवल ज्ञानसे करके हरेक पदार्थोंका यथातथ्य स्वरूप कथन करते हैं। वर्तमान समयमें चोंवीस तीर्थंकरोंका विरह है, अभी चौवीसमें तीर्थंकर महावीर स्वामीका शासन वर्त रहा है।

श्रीमान् महावीर स्वामीके पवित्र मुखद्वारा कथन किये हुये सत्शास्त्रोंका अभी आधार है, तथा उनोंकी प्रतिमाके दर्शन करते उनोंका स्मरण होता है, उसका आधार है। तीर्थंकरकी प्रतिमा मूर्ति शान्त है। अतएव उसके सामने देखने प्रथम तो भव्यात्मारे अंतःकरणमें शान्तवादिनी गगाका प्रादुर्भाव होता है। चित्तमें ऐसा विचार आता है कि अहो! जिस भगवानके अ गुठेके सचारसे मेरु कपायमान हुआ, ऐसे बल्वान थे; तोभी अखीरमें तीस वर्षके बाद मुनिपना ग्रहण किया। अहो! जिनोंकी राजा तथा देवता और इन्द्र सेवा करते थे, वह भगवान

अरण्यमें अकेले फिरे। अरे चेतन! तू कब राग-द्वेष रहित होकर समता भावसे मुनिपना ग्रहण करेगा, कब वैसी अवस्थाको प्राप्त होगा? जिन भगवानको अनेक सुगंधिमय चूर्ण मिश्रित जलसे इंद्रादिक देवताओंने स्नान करवाया, वह भगवान अरण्य-जंगलमें, शून्यागारमें, द्रव्यस्नान रहित विचरे। तू क्या न्हा धोकर द्रव्य स्नानसे अपने आत्माको पवित्र मानकर खुशी होता होता है? भगवान अनंत शक्तिके स्वामी थे, तोभी उनोंने अनार्य जनोंकी कठोर वाणी क्षमासे सहन की। अरे जीव! तू कब अन्योंकी कठोर वाणीको सहन करेगा? कोई असभ्य वचनसे तेरेपर आक्रोश करता है, तब तू क्यों लाल पीला हो जाता है (अर्थात् क्रोधाधीन)? और मनमें बूरेका चिंतन करता है। तेरी क्या गति होगी? श्री तीर्थंकर भगवानके और तेरे आचरणमें कितना अंतर-फेर है? श्री तीर्थंकर भगवानने सुवर्ण सोना, चांदी इत्यादिकको असार जानकर त्याग किया, हे लोभी पामर प्राणी! तू भगवानसे उलटा चलकर सोना और चांदी इत्यादिकको तेरा मानता है, और उसकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके कुकर्म करता है, अतःएव क्या! तू परभवमें दु:खी नहीं होगा? अवश्य होगा। श्री तीर्थंकर भगवानने स्त्रीको असार जानकर उसका त्याग किया, और स्त्री संबंधी भोगोंकी किंचित् मात्रभी अभिलाषा नहीं करी, देवताओंकी स्त्री संबंधी भी अभिलाषा नहीं करी, स्त्रीओंका शरीर सातधातुओंसे बना हुआ

जानकर, तथा उसके शरीरमें केवल सुखकी भ्रान्ति मानकर उसका त्याग किया। स्त्रीके दो प्रकार है। एक द्रव्य स्त्री और दूसरी भाव स्त्री। देवता और मनुष्य तथा तिर्यंचकी जो स्त्री वे द्रव्य स्त्री जानना। दूसरी भाव स्त्री-वे आत्माकी परवस्तुमें अभिलाषा, पौद्गलिक वस्तुकी ममता और उसका उपभोग, उससे उत्पन्न भई हुई आत्माकी राग-द्वेषमय अशुद्ध परिणति उसको भाव स्त्री कहते हैं। बहिरात्मा सर्वदा अशुद्ध परिणतिमें रमण करते है, उनोंके चित्तमें हरेक संसारके पदार्थकी अभिलाषा रहती है, उनोंको परवस्तुमें सदाकाल निमग्न होना पडता है। एकांतसे द्रव्य स्त्रीके त्यागसे भाव स्त्रीके त्यागी नहीं कहला सक्ते। भाव स्त्रीके त्यागसे द्रव्य स्त्रीका अवश्य त्याग होता है। श्री परमात्माने यह उभय स्त्रीयोंका त्याग किया है। धर्मध्यान और शुक्ल ध्यानमें चित्तकी ऐक्यता-एकाग्रता करते हुए ग्रामानुग्राम-(एक ग्रामसे दुसरे ग्राम) विचरे। अहो मैं द्रव्य स्त्री और भावस्त्रीके त्याग पूर्वक आत्माकी शुद्ध परिणतिको पहिचान कर उसमें मग्न होकर कब मुनिपना ग्रहण करूंगा, और ग्रामानुग्राम विचरूंगा। श्री तीर्थंकर भगवानने पंच महाव्रत अंगीकार किये वैसे मैं भी पंच महाव्रत ग्रहणकर चारित्र तथा निर्मल स्वभावमें मनुष्यायु निर्गमन करूंगा? अहा! कहां मेरी अल्पज्ञता और कहां सर्वज्ञकी सर्वज्ञता! मैं अल्पज्ञ हूँ तोभी अभिमान करता हूँ। अहो! प्रभुकी शान्तमूर्ति मेरे हृदय कमलको सूर्यके प्रकाश समान विकास करती है।

श्री प्रभुकी मूर्तिसे साक्षात् तीर्थंकर भगवानकी स्मृति–स्मरण होता है, और प्रभुका स्मरण होते साक्षात् मूर्तिमें और प्रभुमें–परमात्मामें भिन्नताका भास नहीं होता। अहो ! परमोपकारी, परमपूज्य, अशरण शरण, भवांभोधि तारक तरणि समान संसार तारक, चारगति वारक, श्री तीर्थंकर भगवानके स्मरणसे क्षण भरमें मनके संकल्प–विकल्पोंका नाश होता है।

प्रश्न—रूपीका ध्यान और स्मरण करनेसे रूपीपना प्राप्त होता है, और अरूपीका ध्यान स्मरण करनेसे अरूपीपना प्राप्त हो, और रूपीपनेसे परमात्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। वास्ते रूपी ऐसे प्रभुकी मूर्तिका ध्यान–स्मरण करनेसे अरूपीपना किस प्रकार प्राप्त हो ?

उत्तर—हे पृच्छक ! हे भव्यात्मा ! एकाग्रचित्तसे श्रवण कर। ध्यानके दो प्रकार हैं, एक सालंबन ध्यान और दुसरा निरालंबन ध्यान। साकार वस्तुमें गुणीका आरोप करके, एकाग्रचित्तसे गुणोंका स्मरण करना वे सालंबन ध्यान कहलाता है, साकार वस्तुके अवलंबन–आधार विना भाव स्फुरायमान–प्रगट नहीं होता ! भावके प्रगट होनेसे निरालंबन ध्यान हो सक्ता है। वे कहते हैं।

अपना आत्मा जो कि परमात्म स्वरूप है, उसके असंख्यात प्रदेश हैं, वे एक एक प्रदेशमें अनंतज्ञान है, अनंत वीर्य है, आत्मा अनंत गुणोंका स्वामी है, कर्मसे रहित स्फटिक समान

निर्मल है, शुद्ध है, ज्ञानमय है, एव उपयोग करके एकाग्रवृत्तिसे स्मरण करना, उसमें तल्लीन होना, उसका नाम निरालम्बन ध्यान है। निरालम्बन ध्यानका शुक्लध्यानमें समावेश होता है, और सालम्बन ध्यानका धर्मध्यानमें अतर्भाव है; विना सालम्बन ध्यानके निरालम्बन ध्यानकी प्राप्ति नहीं होती। वास्ते प्रथम सालम्बन ध्यानकी आवश्यकता है। रूपीका ध्यान करनेसे रूपीपना प्राप्त होता है, ऐसी जो शका करी वे भी युक्तिद्वारा विचारते निरस्त होती है। सबबकि, परमात्माकी मूर्तिमें भाव तीर्थकरका आरोप करके उनोंके गुणोंका ध्यान तथा स्मरण करनेसे रूपीपना प्राप्त नहीं होता। उल्टा कर्मसे सयुक्त आत्माकी शुद्ध दशा जागृत होते अरूपी पद प्राप्त होता है, आत्म हिताकाक्षी हरेक वस्तु देखता है, परतु वे तन्मय नहीं बनता।

जिस वस्तुका ध्यान अथवा स्मरण करनेसे प्राय.कभी उसमें तन्मय नहीं बन सक्ते। विषका ध्यान या स्मरण करनेसे तन्मय नहीं हो सक्ते अर्थात् विषमय नहीं बन्‌ प्रकार जो जीव अभव्य है, उस पदकी अर्ह प्राप्ति नहीं होती। उ प्रगट हो तो

का आरोप किया है। उन परमात्मामें रहे हुए गुणोंकी प्राप्ति के लिये उनोंका ध्यान-स्मरण करना। अतःएव उन गुणोंके आधारभूत आत्मा जो अरूपी पद पाया है, उस पदके स्मरण तथा ध्यानसे अपने (वे पद) पासकें।

जिस २ व्यक्तिका स्मरण करते है, उस व्यक्तिमें रहे हुए गुणोंकी योग्यताको प्राप्त करनेकी अपनेमें शक्ति तथा स्वभाव होता है, तो वे गुणोंको अपने प्राप्त करते हैं।

श्री तीर्थंकर शरीरनिष्ठ अनत गुणका ध्यान करते रूपीद्वारा अरूपीका ध्यान होता है। मुख्य रीतिसे तो अपना ध्यान उनोंमें रहे हुए गुणोंको प्राप्त करनेका है। अतःएव रूपीका ध्यान करनेसे रूपीपना प्राप्त नहीं होता। सबबकि उनोंके शरीरमें रहे हुए गुणोंका स्मरण तथा ध्यान और जैसे उनोंने तपश्चर्या करी, किस प्रकार भव्यजीवोंको उपदेश दिया, आत्माके गुणोंको प्राप्त करनेके लिये उनोंने पच महाव्रत और मुनिव्रत अंगीकार करके कैसेर कष्ट सहन किये, अतमें घातिकर्मका क्षय करके कैवल्य लक्ष्मीसे अपने आत्माको अखंड धनका स्वामी बनाया, वैसे मैंभी कब करुगा ? एव अपनी मनोवृत्ति उन गुणोंको प्राप्त करनके लिये अपना लक्ष्य दिखाती है; परन्तु उनोंका शरीर मनोहर था, वैसा मेरा हो, ऐसी अभिलाषा नहीं रहती। अतः एव रूपीपनाभी प्राप्त नहीं होता। वास्ते रूपी ऐसे परमात्म प्रभुकी पूजा अथवा भक्ति करनेसे ऐसा कहा जाताहै कि, सा-

पहनकर दीनता वर्ताई, ममताके जोरसे बाह्यधनरूप भिक्षाकी याचना करता हूँ, उसको प्राप्तकर मैं सुख मानता हूँ, और क्षणमें दुःखी होता हूँ, अहो ! इस वेश्याने मेरा सर्वस्व आत्मिक धन हरण किया है। मेरा उत्तम कुल है, सिद्ध परमात्माके समान मेरे भाई हैं; तो भी मैं दुःखी किस प्रकारसे होता हूँ ? मुझे अशुद्ध परिणतिरूप वेश्याने असत्य वस्तुरूप मोहमें डाल दिया है। इससे मेरी शुद्ध परिणति चेतनारूप स्त्रीके संगका त्याग करना पडा है, और अशुद्ध परिणति रूप स्त्रीका सग किया है। अतःएव अब शुद्ध चेतना मेरा सग करेगी अथवा नहीं, इसकी भी मुझे शंका रहती है। अब अशुद्ध परिणतिरूप वेश्याके घरमेंसे निकल कर मेरे असंख्यात प्रदेश रूप घरमें रमण करूं; उस घरमें शुद्ध चेतनारूप स्त्रीका समागम होगा, ऐसी चिंतवना करके आत्माने अपने घरमें प्रवेश किया तो वहा शुद्ध चेतनारूप स्त्रीको स्वामीके वियोगसे दुःखदावस्थामें देखी।

आत्मा कहता है कि:—हे मेरी प्राणवल्लभा शुद्ध चेतना ! तू क्यों दुःखी दिखाइ देती है ? उसका क्या सबब है ?

शुद्ध चेतना—हे आत्मपति ! तुमने अनादिकालसे मेरे सगका त्याग किया है, और अशुद्ध परिणतिरूप वेश्याके संगसे तुम तुमारी अनत शक्ति को गँवा बैठे हो, रक समान बन गये हो, तुमारी दुःखकारक हालत देखकर मुझे रोना आता

है, तुमारा सर्व धन तुम हार बैठे हो, तुमारी गुण रूप ऋद्धि-का त्याग करके दिवाने आदमीके मुताबिक सोना, चांदी, घर, महेल और स्त्री पुत्रादिकको ऋद्धि समान मानते हो। यह तु मारी कैसी शोचनीय हालत है?

आत्मपति—मेरी प्राणप्रिया! मेरे धनकी रक्षक, असख्यात प्रदेशरूप घरको कर्म रूप घरका कचरा निकालकर निर्मल रखने वाली, और बिना अपने पतिके अन्यके साथ सबध न रख वाली, अब मुझे सिवाय तेरे अन्यकी सगति ठीक नहीं लगती। मै द्रव्य रहित हुआ हूँ, अनेक सकट सहन करता हूँ और चा रगतिमें भटकता हूँ। वास्ते मैं क्या करु कि, जिससे सिद्ध भगवान जो कि मेरे भाई हैं उनोंके समान बनु?

शुद्ध चेतना स्त्री—प्यारे पति! तुमारी ऐसी दुर्दशा देख-कर मुझे दु ख होता है, तुमारे दु खसे मैंभी दु'खी भई हूँ; तुमारे भाइ सिद्ध कैसे सुखका उपभोग कर रहे हैं! अनत सुख समय समयमें भोगव रहे है। और तुमारेको तो उसका लेश-अश मात्रभी नहीं है, अहो! तुमारी कैसी कगाल हालत हो गई है!

आत्मपति—रमणी! अब तू मेरी ऐसी हालत मुझे वा-रवार कहकर मत बना। सबबकि मुझे लज्जा आती है। अब मैं कभी अशुद्ध परिणतिरूप वेश्या कि, जिसके वशमें सकल जीव मृग समान फँसे पडे हैं, पागल बन गये हैं, यह मै विश्वास

पूर्वक कहता हू कि, अब उसकी सगती न करुंगा।

शुद्ध चेतना स्त्री—मेरे पूज्य आत्मपति! अब तो तुम ठिकानेपर आये हो; परतु एक क्षणमें उसकी जालमें फँस जाओगे। सबब कि, तृष्णा, विषय पिपासा रूप वेश्याकी दासीयां तुमको लुभाकर—लालच देकर एक क्षणमें उसके पास लेजायगी। उस समयमें पुनः कुत्तेकी पुंछडी समान ये वैसेके वैसे हो जाओगे और मुझे यादभी न करोगे। वेश्याकी संगतिसे विषयरूप मदिराके प्याले, अविवेक रूप पलग उपर बैठकर पीओगे, और पागल बन जाओगे। यह मेरी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरा शत्रु, यह मेरा मित्र, यह मेरा पिता, यह मेरी माता, यह मेरा धन, यह मेरा भोजन एव मुखसे बकबक किया करोगे। तुम पागल बन गये कि, क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप चोर तुमको पकडकर तुमारा धन हरण करने लगेंगे, तुमको भान नहीं रहेगाकि मुझे चार कषाय रूप चोर लूटते है, और मैं लूटा जाता हू। तुमारा गला ममतारूप कटारीसे काट डालेंगे, और तुम दुःखी बनोगे। वास्ते हे आत्मपति! प्रथमसेही मैं आपको कहती हूँ कि, अशुद्ध परिणतिरूप वेश्याकी तृष्णा तथा विषय पिपासारूप दासीयां तुमारे हृदयमे प्रवेश करके तुमको खेंचकर वेश्याके पास ले जायगी; वास्ते आप उसका विश्वास न रखें। उसके आनेके मार्ग बन्ध करके साथ मेरे असख्यात प्रदेशरूप घरमें निवास करोगे तो किसीका-

कि मैं अब पर पुद्गलके योगसे उसकी ममता, आशा और पिपासा सेरी अशुद्ध परिणतिका दास न बनुंगा; ऐसा कहो तो मैं सदा काल तुमारी पास रहुं और किंचित् मात्रथी दूर न जाउ।

आत्मपति–मेरी परम प्रिय शुद्ध चेतना स्त्री ! तेरे वचन मेरा हृदय भेद डालते हैं,–मैं कुछ लुच्चा अथवा रंडवा नहीं हूं। उत्तम कुल्वान् हूं, कुलीन हूं और सिद्धका भाई हूं। अब बाह्य धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, माता, पिता, इत्यादिक उपरसे ममता उतारकर आभ्यंतर आत्मिक धनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करुंगा, और मेरा धन अनादि कालसे तिरो भाव रहा है; उसका आविर्भाव करुंगा। और आत्मिक ऋद्धि प्रगट करुंगा।

हे शुद्ध चेतना ! अपने अनंत सुखकी लहेरमें स्वकाल निर्गमन करेंगे। मैंने सांसारिक पदार्थोंके उपरसे प्रवृत्ति उठाकर अब आत्मगुणमें प्रवृत्ति करी है। आत्मिक धनके सामने पौद्गलिक धन किस हिसाबमें है ? अहो ! इतना समय पर्यंत कांचके टुकडे को मणी समजकर मैं मूर्ख बना ! अब कैसे जान–बूझकर पौद्गलिक सुखकी भ्रान्तिसे संसारमें प्रवृत्ति करूं ? अलबत नहीं। मेरा आत्म धन मन, वचन और कायासे अलग है। तो फिर ये तीन योगको कैसे धन मानु ? अवश्य अब न मानुगा। इस प्रकारके आत्मपतिके वचन श्रवण करके शुद्ध चेतनारूप स्त्री अत्यंत प्रमोदको प्राप्त हुई, और साथ अपने पतिके अहर्निश

रहने लगी । आत्मपतिनेभी ज्ञान क्रिया करके कर्म कलंक रहित होकर घनघाति आदि कर्मोंका क्षय करके अनंत चतुष्टय-की प्राप्ति करी; और साथ शुद्ध चेतनारूप होके मोक्ष-स्थानमें जा रहे ।

इत्यादि ध्यानके कारणभूत श्री जिनेंद्रदेवकी प्रतिमा है, उसके योगसे सालम्बन ध्यानद्वारा निरालम्बन ध्यान प्राप्त होता है, और निरालम्बन ध्यानके योगसे जीव शाश्वत पदका संगी होता है । यह बात संदेह रहित है । परमात्माने अपने आत्माको अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यादिका लाभ दिया है । वे लाभ मैं मेरे आत्माको कब दूंगा ? परमात्मामें और मेरेमें पृथ्वी और आकाश जितना अंतर है । यदि मैं प्रयत्न करूं तो उनोंके समान बन सकुं, आत्मवीर्य प्रगट करके कर्मके दलिये विखेर डालुं ! परन्तु प्रमादमें स्वकाल गँवाउं तो किस प्रकार परमात्मपद प्राप्त कर सकुं ? प्रमादका त्याग करके ज्ञान-दृष्टिसे शिवपुर–मुक्ति–मोक्षका मार्ग देखकर उसमें प्रवृत्ति करु तथा चरण गुणका भजन करु; स्वस्वभावमें रमण करु और पर-भावका त्याग करु तो मुक्ति करतल न्याय (मुक्ति हाथकी हथेली समान) पास ही है । ऐसा दृष्टिगोचर होता है–दिखाई देता है ।

अनंत मुनिश्वर ज्ञानदृष्टिसे मुक्तिस्वरूप देखकर उसकी श्रद्धा करके, चरण अंगीकार कर मुक्तिपद पाये हैं, पाते है और पायेंगे । सिद्ध पद प्राप्त सिद्ध कैसे है वे कहते हैं ।

श्रद्धा ज्ञान विवेकथी, जाणे जे षट् द्रव्य ॥
सूत्र पंचांगी सद्दहे, पंडित आसन्न भव्य ॥५॥

चार इन्द्रियां, तीन बल, श्वासोश्वास और आयु ये दश प्राणसे भिन्न, औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, ये पांच शरीरसे अलग, शरीरमें वर्तनेवाले परन्तु शरीरसे भिन्न, कृष्णलेश्या नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या, शुक्लेश्या य छलेश्यासे भिन्न, मनयोग, वचनयोग और काययोग योगसे भिन्न, वज्रऋषभनाराच सघयणादि छ सघयणसे भिन्न, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्मसे भिन्न, औदारिक वर्गणा, वैक्रिय वर्गणा, आहारक वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, श्वासोश्वास वर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मण वर्गणा ये आठ वर्गणासे भिन, राग-द्वेषमय और अशुद्धमय परिणतिसे भिन्न, आत्मा अरूपी अनन्त शक्तिका मालिक है। अनंत गुणका आधार है। आत्मद्रव्य पुद्गलास्तिकायसे भिन्न है। आत्मा आंखसे दिखाई नहीं देता, न नाकसे सुंघा जाता है, ये आत्मा कानसे सुनाई नहीं दे सक्ता। जो सुनाई देता है वे शब्द पुद्गल है। और वे शब्दसे वाच्यार्थका ज्ञान हाता है वे अरूपी है। पंच द्रव्यसे आत्मा भिन्न है। जो २ वस्तु आंखसे दिखाई देती है, वे पुद्गल है और उससे आत्मा भिन्न है। क्षीर नीरवत् शरीरमें व्याप रहा है तौभी आत्मा भिन्न है। भव्य जीवको जिस समय मोक्षमें जाय तब अनादि सान्त भागे है। चार

गतिमें शरीर रखे–ग्रहण करे उसकी अपेक्षासे शरीरका सबध सादि सान्त भागे है। अभव्य जीवको शरीर सबध अनादि अनतमें भागे है। पाच प्रकारके शरीरमें पट्गुण हानी वृद्धि प्रत्येक समयमें जीव जीव प्रति हो रही है। चार गतिमें परि-भ्रमण करते पाच प्रकारके शरीर अनेकवार ग्रहण–धारण किये, प्रत्येक शरीर भिन्न भिन्न प्रकारके हैं। वर्ण, गध, रस और स्पर्शसे पट्गुण हानि वृद्धि प्रत्येक शरीरमें बनी रही है। पाच इन्द्रिया भी प्रत्येक भवमें भिन्न २ प्रकारकी जीवने धारण की, उसमेंभी पट्गुण हानि वृद्धि बनीही रही है। त्रण बलभी प्रत्येक जीवप्रति भिन्न २ प्रकारके है। किसी जीवका मनोबल विशेष होता है, किसी जीवका कायबल अल्प होता है। किसीका कायबल हीन होता है किसीका कायबल विशेष होता है। किसीका मनोबल अल्प होता है वचनबल विशेष होता है। श्वासोश्वास और आयु सबबीभी वैसे समज लेना। मनयोगभी जीव २ प्रति भिन्न २ प्रकारका होता है। वचनयोगभी जीव २ प्रति भिन्न २ प्रका-रका होता है। काययोगभी जीव जीव प्रति भिन्न २ प्रकारका होता है। प्रत्येक योगमें पट्गुण हानि वृद्धि रही है। द्रव्यकर्म ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म उसका कर्ता आत्मा व्यवहार नयसे है। अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नयसे द्रव्य कर्मकर्ता चेतन जानना। राग–द्वेष भाव कर्म है उसका कर्ता आत्मा अशुद्ध नि श्रय नयसे है, परन्तु आत्मा जब स्व स्वरूप पहिचानता है, अपनेमें

स्थित गुण पर्यायको जानता है, उस वक्तमें उसकी विचित्र दशा है। परवस्तुको अपनी मानकर और अनतकाल संसारमें चार गतिमें भटका। उसका पश्चात्ताप होता है। और सिंह-जैसे पींजरेमेंसे छूटने प्रयत्न करता है, वैसे अनंत शक्तिका स्वामी आत्मा कर्म पींजरमेंसे छूटने प्रयत्न करता है, और राग-द्वेषका त्याग करके विभाव दशासे दुर रह कर अपने स्वभावमें शुद्धोपयोगसे रमण करता है, और भावना भावता है।

अद्यराग ज्वरो नष्ट, मोह निद्रा विनिर्गता॥
तत कर्म रिपु हन्मि, ध्यान निस्तृश धारया॥१॥

आज राग ज्वर नष्ट हुआ, आज मोहरूप निद्रा गई, और मैं शुद्धोपयोगसे जागृत हुआ, अब कर्म रूप शत्रुको ध्यानरूप तीक्ष्ण खड्ग धारासे करके हनता हूँ अब कर्म क्या हिसाबमें है? अशुद्ध परिणतिका त्याग करके शुद्ध परिणति अंगीकार कर अपनेमे स्थित अनत गुण कि, जो तिरोभावुसे रहे हैं, उनोंका आविर्भाव करनेके लिये अपने गुणोंका कर्त्ता बनु। और ऐसे विचारते उसकी प्राप्ति तद् स्वरूपका ध्यान धर कर आत्मा परमात्म रूप बनता है।

श्लोक

अहं न नारको नाम, न तिर्यग् नापि मानुष॥
देव• किन्तु सिद्धात्मा,सर्वोऽय कर्म विभ्रम॥१॥

मैं शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिसे देखु तो मैं नारकी नहीं, वैसे तिर्यंचभी नहीं, मनुष्यभी नहीं, देवभी नहीं, परन्तु मैं निरंजन, निराकार परमानंदसे युक्त हूँ और मैं परमात्मा हूँ, तथा ये शरीरादि दिखाई देते हैं वे सब कर्मका प्रपच है। मैं सिद्धात्मा हूँ शेष सर्व प्रपच है। एव भावना करते शुद्ध स्वरूपका अभ्यास होता है।

श्लोक.

अहंच परमात्माच, द्वावेतौ ज्ञान लोचनौ ॥
अतस्त ज्ञातु मिच्छामि, ततस्वरूपोपलब्धये ॥१॥

मैं और परमात्मा उभय ज्ञान लोचनवाले हैं, अतः एव मैं परमात्म स्वरूप प्राप्तिके लिये मेरे आत्माको जानना चाहता हूँ। और सिद्ध स्वरूपमय मैं हूँ एव दृढ सकल्प करके तत् स्वरूपमें ध्यानद्वारा मग्न होकर बाह्य पदार्थोंको भूल जाकर केवल स्वरूपमें रमण कर परमात्म स्वरूप बनुगा, तब कर्म रूप रज निखर जायगी! और मैं सिद्ध शुद्ध रूप ज्ञानादि गुण युक्त बनुंगा।

श्लोक.

अमी जीवादयो भावाः,चिद् चिद्लक्ष लांछिताः॥
तत् स्वरूपा विरोधेन, ध्येया धर्म मनीपिभिः॥१॥

स्थित गुण पर्यायको जानता है, उस वक्तमें उसकी विचित्र दशा है। परवस्तुको अपनी मानकर और अनतकाल संसारमें चारे गतिमें भटका। उसका पश्चात्ताप होता है। और सिंह-जैसे पींजरेमेंसे छूटने प्रयत्न करता है, वैसे अनत शक्तिका स्वामी आत्मा कर्म पींजरमेंसे छूटने प्रयत्न करता है, और राग-द्वेषका त्याग करके विभाव दशासे दुर रह कर अपने स्वभावमें शुद्धोपयोगसे रमण करता है, और भावना भावता है।

अद्यराग ज्वरो नष्ट, मोह निद्रा विनिर्गता ॥
तत कर्म रिपु हन्मि, ध्यान निस्त्रिंश धारया ॥१

आज राग ज्वर नष्ट हुआ, आज मोहरूप निद्रा गई, और मैं शुद्धोपयोगसे जागृत हुआ, अब कर्म रूप शत्रुको ध्यानरूप तीक्ष्ण खड्ग धारासे करके हनता हूँ अब कर्म क्या हिसाबमें है? अशुद्ध परिणतिका त्याग करके शुद्ध परिणति अंगीकार कर अपनेमें स्थित अनत गुण कि, जो तिरोभावसे रहे हैं, उनोंका आविर्भाव करनेके लिये अपने गुणोंका कर्ता बनु। और वैसे विचारते उसकी प्राप्ति तद् स्वरूपका ध्यान धर कर आत्मा परमात्म रूप बनता है।

श्लोक

अहं न नारको नाम, न तिर्यग् नापि मानुष ॥
न देव किन्तु सिद्धात्मा, सर्वोऽयं कर्म विभ्रम ॥१॥

मैं शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिसे देखु तो मैं नारकी नहीं, वैसे तिर्यंचभी नहीं, मनुष्यभी नहीं, देवभी नहीं, परन्तु मे निरंजन, निराकार परमानंदमें युक्त हूँ और मैं परमात्मा हूँ, तथा ये शरीरादि दिखाई देते है वे सब कर्मका प्रपच है। मैं सिद्धात्मा हूँ शेष सर्व प्रपच है। एव भावना करते शुद्ध स्वरूपका अभ्यास होता है।

श्लोक

अहंच परमात्माच, द्वावेतौ ज्ञान लोचनौ ॥
अतस्तं ज्ञातु मिच्छामि, तत्स्वरूपोपलब्धये ॥१॥

मैं और परमात्मा उभय ज्ञान लोचनवाले हैं, अतः एव मैं परमात्म स्वरूप प्राप्तिके लिये मेरे आत्माको जानना चाहता हूँ। और सिद्ध स्वरूपमय मैं हूँ एवं दृढ सकल्प करके तत् स्वरूपमें ध्यानद्वारा मग्न होकर बाह्य पदार्थोको भूल जाकर केवल स्वरूपमें रमण कर परमात्म स्वरूप बनुगा, तब कर्म रूप रज बिखर जायगी। और मैं सिद्ध शुद्ध रूप ज्ञानादि गुण युक्त बनुगा।

श्लोक.

अमी जीवादयो भावाः,चिद् चिद्लक्ष लांछिताः॥
तत् स्वरूपा विरोधेन, ध्येया धर्म मनीषिभिः॥१॥

ये जीवादि षड्द्रव्य चेतन और अचेतन लक्षणसे करके लांछित है, ये सब पदार्थ धर्मध्यानमें उनके स्वरूपमें विरोध न आवे उस प्रकार बुद्धिमान पुरुषोंने ध्यान करना।

श्लोक

प्रबल ध्यान वज्रेण, दुरित द्रुम सक्षय ॥
तथा कर्म यथादत्ते, न पुनर्भव सभव ॥ ॥ ॥

प्रबल ध्यानरूप वज्रसे पापरूप वृक्ष किसी प्रकारसे क्षय करूंकि, वे पुन' उग न सके। ध्यानरूप अग्निसे कर्मरूप का ष्ठको जलाके भस्म करू कि पुन ः ससारमें परिभ्रमण न करना पडे। इस प्रकार अपना आत्मस्वरूप पहिचानकर परमात्मपदार्थे ध्यान करे उसको ज्ञानी कहना। नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द नय, समभिरूढ और एवभूत ये सात नय, तथा नाम निक्षेपा, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार निक्षेपके ज्ञाता सो ज्ञानी है। स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति आदि सप्तभगी सर्व पदार्थोंपर लगा जाने, समकित मोहनी, मिश्र मोहनी, मिथ्यात्व मोहनी, तथा कषाय क्षयसे जिसको शुद्ध तत्त्व प्रगट हुआ है, यथा तथ्य श्रुत ज्ञानसे करके सर्व पदार्थोंका स्वरूप जाने, चार निक्षेपसे नवतत्त्वको जो जाने, गुरुपरपरासे श्रुत ज्ञान सबधी परपराका अनुभव उसके ज्ञाता, ऐसे ज्ञानीगुरु भवसमुद्र ... न समान है। मोक्षकी प्राप्तिके लिये ज्ञान और क्रिया

उभयका अवलम्बन ज्ञानी करता है। एकान्तसे ज्ञान या एकान्तसे क्रियाका निषेध ज्ञानी नहीं करता। जन मन रंजनार्थ– क्रिया नहीं करता। मोक्षकी प्राप्तिरूप संवरका क्रिया करके सदा आत्म भावसे ज्ञानी रमण करता है। मोक्ष मार्गमें ज्ञानकी प्राधान्यता है और क्रियाकी गौणता है। तप जपादिसे जो कर्म कोटी वर्षमें भी नाश न हो वे ज्ञानी श्वासोश्वासमें खपाता है।

दुहा

ज्ञान रहित जेह क्रिया, क्रिया रहित जे ज्ञान ॥
अंतर तेहनो जाणजो, भानु खजुआ समान ॥१॥

ज्ञान रहित अकेली क्रिया और क्रिया रहित अकेला ज्ञान ये उभयमें सूर्य और अर्गिये जितना अंतर है। क्रिया रहित ज्ञान सूर्य समान है, और ज्ञान रहित क्रिया खजुए समान उद्योतकारक है। ये बात भी ऐसा सबोधन करती है कि, मोक्षकी प्राप्ति योग्य तद्धेतु और अमृत उभय क्रिया ज्ञानी कर सक्ता है। बिना ज्ञानके कोई तद्धेतु क्रिया और अमृत क्रियाका स्वरूप न जाने। वास्ते ज्ञानीके पास क्रिया है, वे वाक्य सत्य है। श्री यशोविजयजी उपाध्यायजीभी संयम बत्तीसीमें कहते हैं कि:–

दुहा

हीणो पण ज्ञाने अधिक, सुंदर सुरुचि विशाल ॥
अल्पगम मुनि नहीं भलो, बोले उप

चारित्र गुण करके हीन परन्तु ज्ञान करके मुनि अधिक श्रेष्ठ है। किन्तु अल्पज्ञ मुनि स्वपर हित नहीं कर सक्ते। ऐसा उपदेशमालामें कहा है।

दुहा.

ज्ञानवतने केवली । द्रव्यादिक अहिनाण ॥
बृहत्कल्पभाष्येवली । सरखा भाष्या जाण ॥२०॥
ज्ञानादिक गुण मच्छरी । कष्ट करे ते फोक ॥
ग्रंथी भेद पण तस नहीं । भूले भोळा लोक ॥२१॥
जुवे जवाहर झवेहरी । ज्ञाने ज्ञानी तेम ॥
हीण अधिक जाणे चतुर । मूरख जाणे क्रेम ॥२२॥
आदर कीजे तेहनो । ज्ञान मार्ग स्थिर होय ॥
वाल क्रियामत राचजो । पचाशक अवलोप ॥२३॥
दूरे रहे जे विषयथी । कीजे श्रुत अभ्यास ॥
संगति कीजे सन्तनी । होइ तेहना दास ॥२४॥

श्रुत ज्ञानी और केवली समान भाव ज्ञानसे जानते हैं, एवं बृहत्कल्प भाष्यमें कहा है। ये उभय समान कहे हैं। ज्ञानादिक गुणका द्वेषी-इर्ष्या करनेवाला जो कष्ट क्रिया करता है ये सब निष्फल जानना। अत एव ग्रंथिभेदभी नहीं दिखाई देता।

जोहरी जैसे–जवाहरातकी परीक्षा करता है वैसे–ज्ञानी ज्ञानसे सर्व पदार्थोंको हीन, विशिष्ट सत् रूप असत् जाने, उसकी परीक्षा करता है। त्याज्य, अत्याज्य, आदेय इत्यादि सर्व ज्ञानी जानता है। बाह्य रूचिवंत मूर्ख किस प्रकार स्याद्वाद शैलीको जान सके? जो मुनि ज्ञानमार्गमें स्थिर हो, उनोंका आदर करना। या उस गुणकी अभिलाषावाला हो, उसका सन्मान करना। परन्तु बाल क्रियामें मग्न न होना। इसके विषयमें पचाशककी गवाह देख लेना। पाच इन्द्रियके तेवीस विषयसे दूर रहकर, अपनी मान पूजासे दुर होके आत्माके प्रेमी बनकर ज्ञानका अभ्यास करना। और गीतार्थ आत्मार्थी सत पुरुषोंके आज्ञाधीन रहकर भक्ति करना। और उनोंको संगति करना। ज्ञानीके कटुक वचनभी अमृत समान गिनना। और अज्ञानीके मधुर वचनभी कटु जानना। ज्ञानीकी लात भली परन्तु अज्ञानीको मीठी बातभी बुरी। ज्ञानी पुरूष मोक्ष मार्गानुसारी क्रियामें तत्पर रहते है, और सत्तरह भेदसे सयम पालते है। ज्ञान एकान्तसे सत्य मानकर जो क्रियाका त्याग करते हैं, वे कदाग्रह ग्रस्त जानना।

जो भव्य ज्ञानही सत्य मानकर ऐसाही कहते है कि, क्रिया काण्डकी क्या जरूर है? इस प्रकार क्रियाका उत्थापन करते है, वे ज्ञानका फल नहीं पाते। और मुक्तिरूप स्त्री उन पर राग नहीं करती। अतःएव मुक्ति दूर रहती है। हलवाईकी

उपर मोदक घेवर देखने मानसे क्षुधा तृप्त नहीं होती, परन्तु जब उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न होता है तब मोदक मिलता है, वे भी मुखमें रखें तब स्वाद आता है, और उदरपूर्तिसे तृप्ति होती है। एव ज्ञानी मोक्ष नगरी ज्ञान करके देखते हैं, परन्तु उसकी ओर गमन करे तो पावे, वास्ते क्रियाकी जरूर है। अध और पगुके दृष्टांतसे ज्ञान अ र क्रियाका ज्ञानी अवलबन करता है।

ज्ञानी उत्पाद, व्यय और ध्रुवका स्वरूप जानता है। श्री सुदर्शना चरित्रे।

दुहा

ज्ञानी एकांते जे ग्रहे। क्रियानो करी त्याग ॥
ज्ञान फल पामे नहीं। मुक्ति न धरे तस राग॥१॥
कुडल विगमो मउडु। प्पाओ कणग अवठिय जहा॥
तह सव्वेवि पयथ्था। जीवोणेओ पुणो एव ॥२॥
पुव्व भव पज्जएण।विगमो इह भवगएण उप्पत्ती॥
जीव दव्वेण ठिइ। निच्चानिच्च मेवतु ॥ ३ ॥
दव्व ठयाई निच्च। सव्वमणिच्चच पज्जवठाए ॥
आविर्भाव तिरोभाव। दव्व भावेण वदत॥३॥

कुडले रूप सुवर्ण था, उसका नाश हुआ और सुवर्णका मुकुट रूप उत्पाद हुआ, और सुवर्ण रूपसे ध्रुवपना है। एव

सर्व पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रुव करके युक्त है । पीछले भवके पर्यायका नाश इस भव प्राप्तिका उत्पाद, और जीवरूपसे ध्रुवपना जानना। द्रव्यार्थिक नय करके सर्व पदार्थ नित्य हैं, पर्यायार्थिक नय करके सर्व पदार्थोंका अनित्यपना जानना। हरेक पदार्थोंमें नित्यानित्यत्व रहा है, एवं ज्ञानी जानता है।

ज्ञानी व्यवहार मार्गमें वर्तता है; और निश्चयसे आत्मस्वरूप उपयोगसे करके ध्याता है। किसी नयका उत्थापन नहीं करता। अपने २ स्वरूपसे सर्व नय सत्य हैं।

पुनः ज्ञानीका लक्षण कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सर्व पदार्थोंका स्वरूप जानता है। जीव तत्त्वको द्रव्य, क्षेत्र, कालऔर भावसे जानता है। अजीव तत्त्वको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानता है। पुण्य तत्व, पाप तत्व, आश्रव तत्व, सवर तत्व, वध तत्व, और मोक्ष तत्वको, पच महाव्रत, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीव ये छ द्रव्यका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानता है। नव तत्वका स्वरूप जिन वचनानुसारसे जानने वाला ज्ञानी होता है। जीवादि नवतत्व जानने योग्य है। जीव, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार तत्व आदरणीय हैं। उसमें व्यवहार नय करके पुण्य तत्व अंगीकार करने योग्य है। तथा निश्चय नयसे पुण्य पाप दोनों त्याज्य (त्याग करने योग्य) हैं। जीवद्रव्य आदरने योग्य है। और शेष तत्व आत्मासे भिन्न हैं त्याग करने योग्य

उपर मोदक पेखर देखने मात्रसे क्षुधा तृप्त नहीं होती, परन्तु जब उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न होता है तब मोदक मिलता है, वे भी मुखमें रखें तब स्वाद आता है, और उदरपूर्तिसे तृप्ति होती है। एव ज्ञानी मोक्ष नगरी ज्ञान करके देखते हैं, परन्तु उसकी ओर गमन करे तो पावे, वास्ते क्रियाकी जरूर है। अध और पगुके दृष्टातसे ज्ञान और क्रियाका ज्ञानी अवलबन करता है।

ज्ञानी उत्पाद, व्यय और ध्रुवका स्वरूप जानता है। श्री सुदर्शना चरित्रे।

दुहा

ज्ञानी एकांते जे ग्रहे । क्रियानो करी त्याग ॥
ज्ञान फल पामे नहीं । मुक्ति न धरे तस राग॥१॥
कुडल विगमो मउडु। प्पाओ कणग अवठिय जहा॥
तह सव्वेवि पयथ्था । जीवोणेओ पुणो एव ॥२॥
पुव्व भव पज्जएण।विगमो इह भवगएण उप्पत्ती॥
जीव दव्वेण ठिइ । निच्चानिच्च मेवतु ॥ ३ ॥
दव्व ठयाई निच्च । सव्वमणिच्चच पज्जवठाए ॥
आविर्भाव तिरोभाव । दव्व भावेण वदत ॥३॥

कुडल रूप सुवर्ण था, उसका नाश हुआ और सुवर्णका मुकुट रूप उत्पाद हुआ, और सुवर्ण रूपसे ध्रुवपना है । एव

सर्व पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रुव करके युक्त है । पीछले भवके पर्यायका नाश इस भव प्राप्तिका उत्पाद, और जीवरूपसे ध्रुवपना जानना। द्रव्यार्थिक नय करके सर्व पदार्थ नित्य हैं, पर्यायार्थिक नय करके सर्व पदार्थोंका अनित्यपना जानना। हरेक पदार्थोंमें नित्यानित्यत्व रहा है, एवं ज्ञानी जानता है।

ज्ञानी व्यवहार मार्गमें वर्तता है, और निश्चयसे आत्मस्वरूप उपयोगसे करके ध्याता है। किसी नयका उत्थापन नहीं करता। अपने २ स्वरूपसे सर्व नय सत्य हैं।

पुनः ज्ञानीका लक्षण कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सर्व पदार्थोंका स्वरूप जानता है। जीव तत्त्वको द्रव्य, क्षेत्र, कालऔर भावसे जानता है। अजीव तत्त्वको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानता है। पुण्य तत्व, पाप तत्व, आश्रव तत्व, संवर तत्व, बंध तत्व, और मोक्ष तत्वको, पंच महाव्रत, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीव ये छ द्रव्यका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानता है । नव तत्वका स्वरूप जिन वचनानुसारसे जानने वाला ज्ञानी होता है। जीवादि नवतत्व जानने योग्य है। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार तत्त्व आदरणीय हैं। उसमें व्यवहार नय करके पुण्य तत्त्व अंगीकार करने योग्य है। तथा निश्चय नयसे पुण्य पाप दोनों त्याज्य (त्याग करने योग्य) हैं। जीवद्रव्य आदरने योग्य है। और शेष तत्त्व आत्मासे भिन्न हैं त्याग करने योग्य

है। एवं ज्ञानीके हृदयमें विवेक दीपक प्रगटता है। गणधर भाषित सूत्र पचांगीको ज्ञानी सत्य मानता है। अतएवं विपरीत कथन करे वे निन्हव जानना। श्रीचंद्रविजय पयन्नामें कहा है कि—

—गाथा—

जाणतु बंध मुख्ख। जीवा जीवेय पुण पावेय ॥
आसव संवर निज्जर। किरनाणं चरण हेउ ॥६९॥
नायाण दोसाणं। चविज्झवा सेवण गुणाणंच ॥
धम्मस्स साहणाइ। दुण्णवि किरनाण सिद्धाई॥७०॥
नाणेण विणा करणं। करणेण विणा न तारय नाणं॥
भवससार समुद्द। नाणी करणठिओ तरइ॥७१॥
अस्संजमेण बद्ध। अनाणेणय भवेहिं बहुएहिं ॥
कम्ममल सुभमसुभ। करणेण ददो धुणइ नाणी ७२
संखेण विणा जोहो। जोहेण विणाय जारि संसथ्थं॥
नाणेण हि [illegible] करणेण विणा तहा नाणं॥७४॥
परमथ्थ [illegible] तिरो [illegible]। बंध मुखच ते विणणति ॥
नाउण बंध मुख्ख। खवति पोराणयं कम्मं ॥७७॥
नाणेण होइ करण। करण नाणेण फासिय होइ ॥

दुण्हपि समाओगे । होइ विसोही चरित्तस्स ॥७८॥

जह आगमेण विज्जो ।

जाणइ वाहि तिगिच्छगो निउणो ॥

तह आगमेण नाणी। जाणइ सोही चरित्तस्स ॥८५॥

जह आगमेण हीणो ।

विज्जो वाहिस्स नमुणइ तिगिच्छ ॥

तह आगमपरिहीणो । चरित सोहि नयाणाइं॥८६॥

तम्हा तित्थयर परूवयंमि । नाणमि अथ्थ जुत्तांमि॥

उज्जोओ कायव्वो । नरेण मुख्खाभि कामेण ॥७८॥

इत्यादि

ज्ञानी नवतत्व और चारित्रका स्वरूप जानकर धर्मके साधनभूत ज्ञान और संयमका सेवन करता है। ज्ञान विना क्रिया और क्रिया विना जो ज्ञान है, वे संसारसमुद्र तारक नहीं हैं। चारित्रयुक्त ज्ञानी संसारसमुद्र तिर जाता है। मिथ्यात्वादिमें कर्म रजका जो संचय उसको ज्ञानी क्षय करता है। जैसे विना शस्त्र योद्धा, और योद्धे विना शास्त्र, एवं विना ज्ञान क्रिया और क्रिया विना ज्ञान जानना। ज्ञानसे करके चारित्रकी प्राप्ति होती है। विना ज्ञान चारित्र क्रियाकी प्राप्ति नहीं होती। एवं लड्डु बनाना न जाने तो लड्डु बनानेकी क्रिया किस प्रकार कर

सके। ज्ञान और क्रियाके संयोगसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। परन्तु स्मरण रहे कि, क्रियाके अनेक भेद हैं। विना ज्ञानके चारित्र गुणकी प्राप्ति नहीं होती। चारित्र बतानेवाला ज्ञान है। वास्ते मोक्षकी प्राप्तिके लिये चारित्र अंगीकार करना। वे भी विना ज्ञानके कैसे बन सके? बाह्य क्रियाका आडंबर और साध्य करके शून्य ऐसे जीव भवभ्रमण करते हैं। जैसे-वैद्यक शास्त्रके ज्ञानसे नाडी परीक्षक, रोग और रोगके लक्षण जाननेवाला, वात, पित्त और कफको जाननेवाला, तीन ऋतुके रोगका जाननेवाला विद्वान् वैद्य या डॉक्टर रोगीकी व्याधि जानकर दवा करता है और रोगका नाश करता है। एवं ज्ञानी जिनेश्वर भगवत-कथित आगमोंसे करके, कर्मोंका क्षय करके परमानंद पद प्राप्त करता है। जैसे-वैद्यक शास्त्रमें अनजान वैद्य व्याधिकी चिकित्सा नहीं कर सका। व्याधिका स्वरूप जाने विना उसकी चिकित्सा किस प्रकार कर सके? एवं जिनेश्वर भगवानके शास्त्रसे अनजान कर्मका स्वरूप तथा आत्माका स्वरूप यथा योग्य न जान सके। तो फिर किस प्रकार चारित्र ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करे? वास्ते श्री तीर्थंकर भगवान् प्ररूपित अर्थयुक्त श्रुत ज्ञानादि विषयमें उद्यम करना। मोक्षाभिलाषी पुरुषोंने अवश्य शास्त्र [illegible] तथा श्रवण करने उद्यम करना। श्री तीर्थंकरकी वाणी महापुण्यसे श्रवण की जा सकती है। कुगुरुके [illegible] हुए शास्त्र श्रवण करनेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। विना

ज्ञानके मिथ्यात्वका नाश नहीं होता। जब–सम्यग् ज्ञानरूप सूर्यका उदय होता है–तब मिथ्यात्वरूप अंधकार आपसे आ-पही नष्ट हो जाता है। अब मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं।

मिथ्या—झूंठे शास्त्रमें जिसको धर्मबुद्धि हो उसको मि-थ्यात्वी कहना। कुदेव, कुगुरु, कुधर्ममें इनोंमें सुदेव, सुगुरू और सुधर्मकी बुद्धि उसे मिथ्यात्व कहना। छकाय जीवकी हिंसा करते धर्मकी बुद्धि हो वे भी मिथ्यात्व जानना। जैसे कि, बकरी इदके दिन बकरोंको मारनेमें धर्म मानते हैं। अश्वमेधयज्ञादि होममें जीवकी हिंसा करके धर्म मानना ये मिथ्यात्व है। मिथ्या दृष्टिकी भक्ति बहुमान वे कुमार्ग है। उसमें मार्गकी बुद्धि वे भी मिथ्यात्व। असाधुमें साधुकी बुद्धि वे भी मिथ्यात्व; आठ कर्म युक्त उसमें मुक्त पनेकी बुद्धि वे भी मिथ्यात्व। श्री ठाणांग सूत्रमें दशमें ठाणे दश प्रकारका मिथ्यात्व कहा है। वे आलोवा लिखते हैं।

" दस विहे मिच्छत्ते पन्नत्ते तंजहा
१ अधम्मे धम्म सन्ना २ धम्मे अधम्म सन्ना
३ मग्गे अमग्ग सन्ना ४ अमग्गे मग्ग सन्ना
५ अजीवेसु जीव सन्ना ६ जीवेसु अजीव सन्ना
७ साहुसु असाहु सन्ना ८ असाहुसु साहु सन्ना
९ अमुत्तेसु मुत्त सन्ना १० मुत्तेसु अमुत्त सन्ना"॥

अब अर्थ लिखते हैं। लक्षण—मिथ्यात्वी के रचे हुए शास्त्र अधर्म रूप जानना। उसमें धर्मकी बुद्धि हो वे मिथ्यात्व जानना। धर्म जो सामायिक, आचारांगादि पचांगीरूप सिद्धांत, तथा शुद्धपरंपरा गत श्रुतधर्म, उसमें अधर्मकी बुद्धि हो वे दूसरा मिथ्यात्व जानना। "ज्ञान, दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्ग" ज्ञान, दर्शन और चारित्र मोक्षरूप नगरका पथ है, उसमें अमार्गकी बुद्धि वे तृतीय मिथ्यात्व। अज्ञान, मिथ्यात्व हिंसा, जो ज्ञानका प्रतिपक्षी वे अज्ञान, दर्शन विरोधि वे मिथ्यात्व और चारित्र विरोधिनी हिंसा जानना। अज्ञान, मिथ्यात्व और हिंसा ये तीनों मोक्ष मार्गके अमार्ग–मार्ग नहीं हैं। उसमें मार्गपनेकी बुद्धि वे चतुर्थ मिथ्यात्व।

अजीवेषु जीव संज्ञा–आकाश, परमाणु इत्यादि जो अजीव पदार्थ हैं, उसको जीव माने वे जीवसंज्ञा जानना। "यदुक्त पुरुष एव इदं" कहते परमात्मस्वरूप है। क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमाना ५ काश ६ चंद्र ७ सूर्याख्या ८ इति मूर्तयो महेश्वरसंबंधियो भवत्यष्टाविति। ये आठ परमात्मा महेश्वरकी मूर्तिया है। जीवस्वरूप है। आकाशादि अजीव पदार्थ हैं, उसमें जीवपनेकी बुद्धि कुशास्त्रके अभ्याससे हो वे मिथ्यात्व। ख्रीस्ति, मुसल्मीन, यहुदी और आर्यसमाजी आदि कितनेक मतवादी पृथ्वी, जल, अग्नि और जीव नहीं मानते। ये मतानुयायि ऐसा कहते हैं कि, ये

चारमें जीव है तो श्वासोश्वासभी दिखाई देना चाहिये ? परंतु जडवादी नहीं समजते कि, पृथ्वी आदि जीवोंके शरीर अति सूक्ष्म हैं। उनोंका श्वासोश्वास किस प्रकार जाना जा सके ? पृथ्वीकाय आदि चार जीवोंको स्पर्शेंद्रिय, कायबल, श्वासोश्वास और आयु ये चार बल हैं। कलकत्तेके प्रसिद्ध विद्वान् प्रॉफेसर जगदीशचंद्र बोझने सिद्ध किया है कि, धातुमेंभी जीव है। आर्यसमाजी तथा क्रीश्चि वनस्पतिमें जीव नहीं मानते। वनस्पतिमें स्पर्शेंद्रिय, कायबल, श्वासोश्वास और आयु ये चार प्राण हैं, ऐसा शास्त्रमें कहा है। नदीसूत्रमें ये सिद्ध कर बताया है कि, जीव है। जैसे मनुष्य आहार ग्रहण करता है-वैसे-वनस्पतिभी आहार ग्रहण करती है। जैसे-मनुष्य वढता है, वैसे वनस्पतिभी वढती है। जैसे मनुष्य रोगी होता है वैसे-वनस्पतिभी रोगी होती है। मनुष्यको जैसे आहार सज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन सज्ञा और परिग्रह सज्ञा रही है। एव वनस्पतिमेंभी आहारादि चार संज्ञाए हैं।

जीवेषु अजीव सन्ना—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ये छ काय हैं। पृथ्वीकायादिमें जीव है, तो भी धारण न करना वे मिथ्यात्व। तथा वासी रोटी, खीचडी, शीरा तथा लापसीका नियत समय हो जाने बाद उसमें जीव पैदा होते हैं। तोभी जीव नहीं ऐसा मानना वे मिथ्यात्व। उक्त वस्तुका समय-का-

अब अर्थ लिखते हैं। लक्षण—मिथ्यात्वी के रचे हुए शास्त्र अधर्म रूप जानना। उसमें धर्मकी बुद्धि हो वे मिथ्यात्व जानना। धर्म जो सामायिक, आचारांगादि पंचांगीरूप सिद्धांत, तथा शुद्धपरंपरा गत श्रुतधर्म, उसमें अधर्मकी बुद्धि हो वे दूसरा मिथ्यात्व जानना। " ज्ञान, दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्गः " ज्ञान, दर्शन और चारित्र मोक्षरूप नगरका पथ है, उसमें अमार्गकी बुद्धि वे तृतीय मिथ्यात्व। अज्ञान, मिथ्यात्व हिंसा, जो ज्ञानका प्रतिपक्षी वे अज्ञान, दर्शन विरोधि वे मिथ्यात्व और चारित्र विरोधिनी हिंसा जानना। अज्ञान, मिथ्यात्व और हिंसा ये तीनों मोक्ष मार्गके अमार्ग—मार्ग नहीं है। उसमें मार्गपनेकी बुद्धि वे चतुर्थ मिथ्यात्व।

अजीवेसु जीव सन्ना—आकाश, परमाणु इत्यादि जो अजीव पदार्थ हैं, उसको जीव माने वे जीवसंज्ञा जानना। " यदुक्तं पुरुष एव इदं " कहते परमात्मस्वरूप है। क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमाना ५ काश ६ चंद्र ७ सूर्याख्या ८ इति मूर्तयो महेश्वरसंबंधियो भवत्यष्टाविति। ये आठ परमात्मा महेश्वरकी मूर्तियां है। जीवस्वरूप है। आकाशादि अजीव पदार्थ है, उसमें जीवपनेकी बुद्धि शास्त्रके अभ्याससे हो वे मिथ्यात्व। ग्रीरित, मुसल्मीन, य आर्यसमाजी आदि कितनेक मतवादी पृथ्वी, जल, वायुमें जीव नहीं मानते। वे मतानुयायि ऐसा कहते हैं

रगमें झीलनेवाले, जिनाज्ञासे विरुद्ध वर्तनेवाले न हो, उत्सूत्र भाषण न करे, देश कालानुसारसे सयम मार्गके आराधक, व्यवहार निश्चयनयके ज्ञाता, ऐसे मुनिश्वरमें असाधुपनेकी बुद्धि वे साहुसु असाहु (साधुमें असाधुपनेकी बुद्धि) सज्ञारूप मिथ्यात्व जानना।

८ असाहुसु साहु सज्ञा—मूल गुण, पच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन उससे रहित पासथ्यादिक तथा उत्सूत्र भाषण करनेवाला उसको साधुकी बुद्धिसे पूजना—मानना वे असाहुसु साहु सज्ञारूप मिथ्यात्व जानना।

९. अमुत्तेसु मुत्त सन्ना—जीव आठ कर्मसे मुक्त नहीं हुए उसके विषे मुक्तपनेकी बुद्धि वे अमुत्तेसु मुत्त सन्नारूप नवमा मिथ्यात्व जानना।

१०. मुत्तेसु अमुत्त सन्ना—जो वीतराग भगवान आठ कर्मसे मुक्त है, उसको देव करके माने नहीं, वे मुत्तेसु अमुत्त सन्ना रूप दशवाँ मिथ्यात्व जानना। चतुर्थ कर्मग्रथकी एकावनमी गाथामें पाच मकारके मिथ्यात्व कहे हैं। तद्यथा—

—गाथा—

अभिगहियमणाभिगहियाभि।
निवेसि असंसईय मणा भोगं।
पण मिच्छ बार अविरइमण।
करण निय मुच्छजीय वहो॥ ५१॥

तिक शुक्ला चतुर्दशीसे पीछे फाल्गुन शुक्ला १४-१५ तक, मास, तत्पश्चात् उसमें असंख्यात बेंद्रिय जीव उत्पन्न होवे मरे। फाल्गुन शुक्ला १४-१५ पीछेसे वे अषाढ शुक्ला १४ तक दिन बीस और अषाढ शुक्ला १४ से कार्तिक शुक्ला १४ तक दिन पन्द्रहका उसका नियत काल है। इसके बाद जीव पैदा हो उसको न माने और अजीव समय पनेकी बुद्धि हो, वे मिथ्यात्व। फिर उकाले हुए, पानीका काल व्यतीत होने बाद वे कच्चा पानी हो जाय। अर्थात् उसमें कच्चे पानीमें जीव उत्पन्न होते हैं, एव वे पानीमें भी जीव पैदा हो और मरे। चोमासेमें तीन प्रहर बाद उकाला हुआ जल कच्चा हो जाता है। शीयालेमें चार प्रहरका काल और उष्ण ऋतुमें पाच प्रहर पर्यंत उष्ण जलमें जीव पैदा न हो। उपरात कच्चा पानी हो जाय। उष्ण पानीका काल व्यतीत हुए बाद वे पानीको अचित (निर्जीव) कर माने, उसे जीवेसु अजीव सज्ञा रूप मिथ्यात्व जानना।

साहूसु असाहु सन्ना—जो साधु शुद्ध समाचारी पालता हो, श्री सुधर्मास्वामी पाट परंपर अविच्छिन्न गुरू परंपरास चरके उक्त हो, पच महाव्रत शुद्ध पाले, बैतालीस दोष रहित आहार ग्रहण करे, चरणसित्तरी और करणसित्तरी पालके आत्म स्वभावमें रमणता करनेवाले परम सवेगी, कचन तथा कामिनीके त्यागी, उग्र विहारी, भारड पक्षी समान अप्रमत्त, सवे

रंगमें झीलनेवाले, जिनाज्ञासे विरुद्ध वर्तनेवाले न हो, उत्सूत्र भाषण न करे, देश कालानुसारसे संयम मार्गके आराधक, व्यवहार निश्चयनयके ज्ञाता, ऐसे मुनिश्वरमें असाधुपनेकी बुद्धि वे साहुसु असाहु (साधुमें असाधुपनेकी बुद्धि) सज्ञारूप मिथ्यात्व जानना ।

८. असाहुसु साहु सज्ञा—मूल गुण, पंच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन उससे रहित पासथ्यादिक तथा उत्सूत्र भाषण करनेवाला उसको साधुकी बुद्धिसे पूजना—मानना वे असाहुसु साहु सज्ञारूप मिथ्यात्व जानना ।

९. अमुत्तेसु मुत्त सन्ना—जीव आठ कर्मसे मुक्त नहीं हुए उसके विषे मुक्तपनेकी बुद्धि वे अमुत्तेसु मुत्त सन्नारूप नवमा मिथ्यात्व जानना ।

१०. मुत्तेसु अमुत्त सन्ना—जो वीतराग भगवान आठ कर्मसे मुक्त हैं, उसको देव करके माने नहीं, वे मुत्तेसु अमुत्त सन्ना रूप दशवाँ मिथ्यात्व जानना । चतुर्थ कर्मग्रंथकी एकावनमी गाथामें पाच प्रकारके मिथ्यात्व कहे हैं । तद्यथा—

-गाथा-

अभिगहियमणाभिगहियाभि ।
निवेसि असंसईय मणा भोगं ।
पण मिच्छ बार अविरइमण ।
करण निय मुच्छजीय वहो ॥ ५१ ॥

१ अभिग्रहित-कुदेव, कुगुरू, कुधर्मको सत्यपनेकी बुद्धिसे जो जीवने ग्रहण किये हो, उसे न छोडे, वे लोह वाणिकवत् अभिग्रहित मिथ्यात्व जानना।

२ अनभिग्रहित मिथ्यात्व-सर्व देव तथा सर्व गुरू सत्य हैं। दुनियामें चलते हैं उतने सर्व धर्म सत्य है। सत्यदेवको न पहिचाने। वैसे कुदेवकोभी पहिचाने नहीं। भगवे वस्त्र धारण किये और जिनोंने अपनेको गुरु मनाये उतने सब गुरु हैं। सर्वको नमन करना किसीकी निंदा न करना, इस मिथ्यात्ववालेकी बुद्धि जोगी, सन्यासी, भरडा, भगत, लिंगिया, पादरी, जती, परमहस, भक्त, साधु इत्यादि सबमें एक समान हैं। वे सत्य तत्व प्राप्त न कर सके। ये अनभिग्रहित मिथ्यात्वका स्वरूप जानना।

अभिनिवेश—वीतराग वचन जानकर विपरीत कथन करे, एक वक्त अनजान पनेसे असत्य बोल गया पश्चात् उसका स्था पन करनेके लिये बहुत उपाय युक्ति प्रयुक्ति करे। जान बूझकर कुयुक्तिसे असत्य बोले वे अभिनिवेश मिथ्यात्व जानना।

प्रथम श्री महावीर स्वामीके शासनमें जमालि प्रमुख निह्नवोंको अभिनिवेश मिथ्यात्व जानना। इस चोवीसीमें हुंडा अवसर्पिणी कालके योगसे दस तो आश्चर्य हुये। फिर बहुत बहुल कर्मा कृष्णपक्षी दिखाई देते हैं। शुक्लपक्षी लघुकर्मी

जीव थोडे दृष्टिगोचर होते हैं । जिसको अधिक पुद्गल परावर्त ससार हो वे कृष्ण पाक्षिक जीव समजना । जिनोंको अर्ध पुद्गल परावर्तमें मोक्ष प्राप्ति हो, वे शुक्लपाक्षिक जीव जानना। श्री ठाणांग सूत्रकी टीकामें जिसको अर्ध पुद्गल परावर्त हो उसको शुक्ल पाक्षिक कहा है।

यदुक्तं

जेसिमवड्ढो पुग्गल परियट्टो सेसओ संसारो ।
ते सुक्का पक्खीया जीवा अहिए पुण कण्हपक्खिय॥१॥

इत्यादि

अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिय जेहि हुज्ज सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढ पुग्गल परियट्टो चेव ससारो ॥२॥

इत्यादि कृष्ण पाक्षिक जीवोंके मनमें [illegible] अधिक होता है। श्री वीर प्रभुके शासनमें [illegible] हुए है [illegible] कार श्री ठाणांग सूत्रके सातमे ठाणे कहा है।

" आलापश्चायं समणस्स [illegible]

श्री महावीर स्वामीको केवलज्ञान हुए बाद चउदह वर्ष हुए बाद बहु रतमति जमाली नामक निह्नव हुआ। अधिक समयमें कार्य हो उसमें वे आसक्त हुआ। जो कार्य करने लगे वे किया न कहना, जब संपूर्ण हो जाय तब किया कहना। श्री वीर प्रभु तो ऐसा सत्यार्थ प्रकाश करते हैं कि, " कडे माणे कडे " करने लगे वे किया, ये वचनका लोप करनेवाला तो उत्सूत्र भाषी हुआ। श्री महावीर स्वामीकी पुत्रीभी इस मतमें शामिल हुईथी।

वे एक दिन किसी ग्राममें कुंभकारके स्थानमें उतरे थे, और वे ढक कुंभकार महावीर स्वामीका श्रावक था। उसने प्रियदर्शना साध्वीको प्रतिबोध देनेके लिये उसके वस्त्र उपर अग्नि डाला। तब वस्त्र जलने लगा और साध्वी बोली कि, वस्त्र जल गया। तब ढक कुंभकार श्रावकने कहा, साध्वीजी! अभी वस्त्रमें अग्निसे छेद गिरा है, और किंचित् मात्र जल गया, वे जल गया ऐसा कैसे कहा जाय? तुमारे मतानुसार तो सब साडी जलकर भस्मीभूत हो जाय तब जल गई कहलाती है। क्या तुम जमालीके मतको भूल गये। साडी जलने लगी उसे साडी जली ऐसा कहना येतो महावीर स्वामीका मत है। तो वे जली ऐसा कहकर प्रभुके वचनका स्वीकार करते हो, और जमालीके वचनकी अश्रद्धा करते हो वे क्या युक्त कहा जा सक्ता है? इस वचनसे साध्वीको प्रतिबोध हुआ, और सत्यमार्ग श्री

महावीर प्रभुका ग्रहण किया । जमालीको बहुत समजाया तो भी उसने न माना, ये प्रथम बहु रतमत निह्नव सावथ्थी नगरीमें हुआ ।

अथ द्वितीय निन्हव–जीव प्रदेशिक मति, अन्तिम प्रदेशमें जीवकी प्ररूपणा करनेवाला तिष्यगुप्त नामक श्री वीर परमात्माको केवलज्ञान उत्पन्न भये पश्चात् सोलह वर्षसे हुआ । श्री राजगृही नगरीमें गुणशिल्क चैत्यमें चौदह पूर्वधारी वसु नामक आचार्य पधारे उनोंका शिष्य गुप्त है । अन्यदा वे आत्म प्रवाद पूर्वका इस मुताविक आलापक (आलावा) पढता है ।

–यथा–

" एगेभते जीव पएसे जीवेतिव्वत्तव्वं
सिआणोयणट्ठे समट्ठे एव दोजीव
पएसे तिन्निसंखिज्जा असंखिज्जा
या जाव एग पएसेण वि भणंतो
जीवतिव्वत्तव्व सिआणो यणठे समट्ठे
एवं दो जीव पएसे तिन्नि
संखिज्जावा असखिज्जावा तम्हा
किसणे पडिपुन्ने लोगाण
सपएस तुल्लापएसे जीवत्तिव्वत्तव्वं ॥ "

आत्माके सर्व प्रदेश एक प्रदेशके हीनपनेसे जीव व्यपदेश नहीं पाता । लोकाकाशके जितने आत्माके सर्व प्रदेश हैं वे मिलकर जीव कहलाता है । तिष्यगुप्तने आत्माके अन्तिम प्रदेशमें जीव है, एव स्वबुद्धिसे निश्चित किया । तिष्यगुप्त आमलकपा नगरीमें गया । वहाँ स्थायीमित्रश्री नामक श्रावकने उनोंको आमत्रण देकर अपने घर लाया । सर्व प्रकारके भोजन किये थे, उसमेंसे अर्थात् लड्डुका एक अन्तिम प्रदेश-हिस्सा, चावल बनाये थे, उसमेंसे एक चांवलका दाना, घीमेंसे एक घीका बिंदु, इस मुताबिक सर्व भोजनमेंसे एक २ प्रदेश दिया और श्रावकने कहाकि, हे भगवन् ! आपको अन्न दिया, अतःएव मैं कृतार्थ हुआ । साधु हसकर कहने लगेकि, हे श्रावक ! तुझने मुझे क्या दिया ? तब श्रावकने कहा हे भगवन् ! आपके सिद्धातानुसार मैंने सपूर्ण दिया है । अन्तिम अवयव देनेसे पूर्ण अवयवी दिया जैसे-अतिम प्रदेशमें जीव है, वैसो मैंने सर्व अवयवी दिया है । अन्तिम प्रदेशमें जैसे-जीव है, वैसे-अन्तमें अवयव सर्व अवयवी एव तुमारे मतानुसारसे मैंने आपको प्रतिलाभित किये हैं । श्री वीर भगवानके सिद्धात अनुसारसे मैंने कुछ नहीं दिया । इत्यादि युक्तियोंसे मित्रश्री श्रावकने तिष्यगुप्तको समजाया और उसने मत छोड दिया ।

अथ तृतीय निन्हव—श्रीवीर भगवानके पश्चात् २१४ वर्ष व्यतीत हुए । श्वताम्बिका नगरीमें पोलास उद्यानमें अषाढाचार्य

अपने शिष्योंको आगाढयोग वहन कराते, हृदय शूल रोगसे रात्रिमें अकस्मात् मरणको प्राप्त हुए। स्वर्गमें गये। वहा जाकर उपयोग दिया। स्नेहसे पूर्वके मृत शरीरमें प्रवेश करके अपने शिष्योंको आगाढयोगकी क्रिया पूर्ण कराई। अन्य नवीन आचार्य स्थापन करके सर्व शिष्योंको अपना वृत्तात कहकर देवलोकमें सिधारे। उनोंके शिष्योंने उनोंका स्वरूप देखकर अव्यक्तमत अंगीकार किया। देवता वा साधु किस प्रकार पहिचाना जाय? साधुके शरीरमें देवताने प्रवेश किया हो, वास्ते कौन जाने वे साधु है या देवता? वास्ते साधुको साधु ऐसा कहना वे अवक्तव्य है। अर्थात् कहने योग्य नहीं। कोई किसीको वदना व्यवहारभी नहीं करते। सर्व व्यवहारका लोप किया, अपचखाणी होय, उसको साधु करके वदन करे तो मिथ्यात्व लगे और मृपावादभी लगे। श्री आपाढाचार्यके शिष्य अव्यक्त नामा मतकी मरूपणा करते विचरते हैं। अब उसी समयमें गीतार्थ महा पुरुप उनोंने बहुत चर्चा की। जो कोई देवता हो और साधुका वेप धारण करके साधुके आचारसे मूलगुण तथा पच महाव्रत पालता हो, उत्तर गुण करके सहित हो, उसको साधुकी बुद्धिसे वदन करे तो मिथ्यात्वभी न लगे और मृपावादभी न लगे। जैनशासनमें तो बाह्यसे व्यवहार नय बलिष्ट है। साधुको-आचारसे शुद्ध परपर रीतिसे वर्तता हो तो उसको वदन करना चाहिये। अतःएव सम्यक्त्व निर्मल होता है

राजर्षि काउसग्ग ध्यानमें खडे रहे थे, दुर्ध्यान ध्याते थे। श्रेणिक राजाने उनको व्यवहारनयसे साधु जानकर वादे, अत.एव मिथ्यात्व न लगा। श्री जिनशासनमें चतुर्विध सघकी भक्तिभी व्यवहारनयसे कही है। यदि व्यवहारनय न माने तो तीर्थका उच्छेद हो जाय। यदुक्त श्री आवश्यक निर्युक्तौ।

छउमत्थ सयमच जा ववहार नयानुसारिणी ॥
सव्वो त तह समायरतो सुज्झइ सव्वो विसुद्धमणो॥१॥
स ववहारोवि बली जम सुद्धपि गाहियं सुयविहीए ॥
कोवइ न सव्वणु वदइय कयाइ छउमत्थं ॥ २॥
तित्थय ववहारनओ वणीयसिह सासण जिणदाण ॥
एगयर परिच्चाओ मिच्छ सकादओ चेव ॥ ३ ॥
जइ जिणमय पवज्जह नामा ववहारनय मुयह ॥
ववहारनओछेए तित्थुछेओ जओ भणिओ ॥ ४ ॥

छद्मस्थ अवस्था पर्यंत व्यवहारनयानुसारिणी क्रिया कही है। तदनुसार जीव आचरणा करे तो कर्मरहित होता है। सर्व भव्य जीव कपट रहितपने व्यवहारनयकी क्रिया करनेसे सापेक्षपणे कर्मरहित होता है। "विशुद्धमणो" इस पदसे करके निश्चयभी कहा और निश्चयसे व्यवहार बलवान् है। छद्

साधुने श्रुतज्ञान करके आधाकर्मादि दोष युक्त आहार

ग्रहण किया हो वे आहार केवलीभी ग्रहण करे। फिर केवलीभी छद्मस्थको वंदन करे। जहातक दूसरा अपनेको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ न जाने वहातक केवलीभी छद्मस्थको वादे। निश्चय और व्यवहारनय करके जिनशासन वर्तता है। उसमेंसे एकका त्याग करते अर्थात् नहीं मानते मिथ्यात्व लगे। जिनशासनको अंगीकार करके व्यवहार नयको न छोडना। व्यवहारनयका उच्छेद करनेसे तीर्थका उच्छेद कहा है। इत्यादि युक्तिसे समजाये तो भी न समजे। आषाढाचार्यके शिष्योंको सबके बाहर किये। तो भी उनोंने कदाग्रह न छोडा। उस समयमें राजगृही नगरीमें बलभद्र राजा राज्य करता है, सूर्यवंशी है, जैनधर्मी है, वे नगरीमें वे आये। उनोंको प्रतिबोधके देनेके लिये पकड मंगवाये. उनोंको मारना शुरू किया, तब साधु कहने लगे कि, हे राजन्! तू श्रावक होकर साधुको क्यों मारता है? तब राजाने कहा–किसको मालुम कि, तुम साधु हो या चोर? कि देवता? मैंभी श्रावक हूँ, देवता हूँ कि चोर हूँ वे किसे मालुम? इत्यादिक युक्तिसे वे शिष्य प्रतिबोध पाये और स्थविर साधुओंके पास पडे। अपना कदाग्रह छोडा, और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुए।

अथ चतुर्थ निन्हव वृत्तात–श्री महावीर स्वामीके निर्वाण पीछे २२० वर्षसे मिथिला नगरीके लक्ष्मीगृह उद्यानमें श्री महागिरीके शिष्य कौडिन्य नामक है। उनोंके शिष्य अश्वमित्र है। वे अश्वमित्रने एक समय अनुप्रवाद पूर्वका नैपुणिक नामक वस्तुका आलापक पढा। यथा

" सव्वे पडुपन्न नेरइया वुछि
जिस्सन्ति एव जाव वेमाणियन्ति "

ये आलापकका अर्थ इस मुताबिक है कि, वर्तमान काल समयका जो नारकी है, वे दूसरे समयमें विनाश होता है। अर्थात् प्रथम समय विशिष्ट जो नारकी था वेही नारकी दूसरे समयमें–द्वितीय समय विशिष्ट हुआ। अर्थात् खयालमें नहीं आया, उनोंके मनमे ऐसा आयाकि, जो जीव पाप करता है वेभी नष्ट हुए हैं, जो जीव पुण्य करते हैं वेभी नष्ट होते है। अश्वमित्र विहार करते राजगृही नगरीमें आया। देवलोकमें देवताभी क्षणमें नष्ट होते है और नारकी भी क्षणमें नष्ट होते है। क्षणमें पुण्य और पापका नाश होता है। इस मुताबिक क्षणक्षय वादकी प्ररूपणा करने लगा। वे नगरीमें खंडरक्ष नामक श्रावक है, वे श्रावक उनको पकडकर मारने लगा। तब उनोंने कहा कि, मैं साधु हूँ, तुम श्रावक हो, ऐसा होते तुम मुझे क्यों मारते हो? तब श्रावकने कहा तुम साधु हो, वे तो प्रथम क्षणमें नाश हुए। अब कौन जाने तुम साधु हो कि चोर हो? सबबकि तुमारा मत है कि, क्षणमें देवता नारकी आदि नाश पाते है, वैसे तुम भी साधु थे वे क्षणमें नष्ट हुए, अब तुम साधु हो ऐसा तुमने खुदने मानना वे तुमारे मतानुसार युक्त नहीं है। इन वाक्योंसे अश्वमित्र समजे और कदाग्रहमतका त्याग किया और गुरुके पाव पडे। ये सामुच्छेदिकनामक चतुर्थ निन्हव जानना।

अथ पंचम निन्हव वृत्तांत—श्री महावीर स्वामीके निर्वाणसे २२८ वर्ष बाद आचार्य श्री महागिरीके धन नामक शिष्य उल्लुका नदीके पूर्व किनारे परके गावमें चतुर्मास रहे हैं, और उल्लुका नदीके पश्चिम किनारे गंगा नामक शिष्य चतुर्मास रहे हैं। वहासे शरद् ऋतुमें गुरुको वदन करने आते मार्गमें नदी उतरते थे। शिरमे टालथी, उसके उपर बहुत धुप लगी, और पांवको नदीका पानी ठंडा लगा। उस समय मिथ्यात्वका उदय हुआ तथा मनमें विचारा कि, "जुगव दो नथ्थि उवओगा" श्री सिद्धांतमें एक समयमें दो उपयोगका निषेध किया है वे असत्य है। सबबकि, मैं साक्षात् एक कालमें दो क्रियाका उपयोग अनुभवतां हूं। शिर उपर उष्णता अनुभवता हूं, पाँवमें शीतलता अनुभवता हूं। एक समयमें उष्णता और शीतताका ये उभयका उपयोग अनुभवता हूं। एव निश्चयकर गुरूके पास आके चर्चा करी। गुरुने कहा—एक समयमें एक उपयोग हो, एक समयही खाता हो, बोलता हो, पावसे चलता हो, तो भी एक समयमें एक क्रियाका उपयोग हो, वास्ते एक समयमें दो उपयोग न कहे जाँय। इस मुताबिक गुरुने बहुत युक्तिसे समजाया न माना। तब गुरूने संघ बाहर किया। पश्चात् वे शिष्य राजगृही नगरीमें आया। मणि नामक यक्षके भुवनमें उतरा, वहां लोग धर्म श्रवण करने आये। उनोंके सामने दोनों क्रियाका युगपत् अनुभव होता है, एवं कथन करने लगा। मन

क्रोध करके मुद्गर उठाया और उसे-क्रूर तर्जना करी। और कहाकि, येही उद्यानमें ठहरे हुए श्री वीर प्रभुके मुखसे ऐसा श्रवण किया है कि,

" यत् क्रियाद्वयस्य अनुभवो युगपन्न भवतीति समय सूक्ष्मत्वेन युगपदनुभवाभिमानो भ्रम एवेति युगपत एक समयावच्छेदेन "

एक समयमें उभय क्रियाका अनुभव नहीं होता। समयकी सूक्ष्मता है, वास्ते युगपत्-दो क्रियाका अनुभव है, एव अभिमान धारण करना, वे भ्रम है। क्या तू वीर भगवानसेभी अधिक ज्ञानी एव है ? यक्षने प्रतिबोध किया।

अथ षष्ट निन्हव वृत्तांत'—श्री महावीर परमात्माके निर्वाण बाद ५४४ वर्षसे अतरिजिका नगरमें बलश्री राजा राज्य करता है। वहां एक पोट्टशाल नामक परिव्राजक है। उसने पेट उपर लोहपट्ट धारण किया है, हाथमें जंबुवृक्षकी शाखा रखता है। लोग उसका कारण पूछते हैं तब कहता है कि, मेरा पेट विद्यासे फट न जाय अत एव लोहपट्ट बांधा है। जंबुद्वीपमें मेरे साथ वाद करनेवाला कोई प्रतिवादी नहीं है, वे प्रगट करनेके लिये जंबुवृक्षकी शाखा लेकर फिरता हूँ। ऐसे समयमें श्री गुप्ताचार्य विचरते हैं, उनोंके रोहगुप्त नामा शिष्य ग्रामांतर है। वहासे गुरुराजको वदन करने आ रहे थे, मार्गमें चर्चाके लिये आघोषणा

हो रही थी, पटह बज रहा था। जो पंडित हो परिव्राजकके साथ चर्चा करे। ये रोहगुप्तने अंगीकार किया। बाद गुरुके पास आये सब वृत्तांत कहा गुरूजीने कहा कि, ये ठीक नहीं किया। अपने वाद करनेका क्या प्रयोजन है? अस्तु। अब भला हो सो करो। गुरूने ज्ञान करके परिव्राजकके पास १ वृश्चिक विद्या २ सर्प विद्या ३ मूषक विद्या ४ मृगी विद्या ५ काका विद्या ६ पक्षी विद्या ७ वाराह विद्या ये सात विद्याएथी, वे जानकर उसकी घात करनेवाली दूसरी सात विद्याए १ मयूरकी २ नकुलकी ३ मार्जारकी ४ व्याघ्रकी ५ गरुडकी विद्या ६ सिंचानकी विद्या ७ सिंहकी विद्या ए सात विद्याए गुरुने दी और आठमा रजोहरण मतरके गुरूने अन्य उपद्रवके नाशके वास्ते दिया। अब रोहगुप्त श्रीगुरुको कह के राज सभामें आया। तब पोट्टशाल परिव्राजकने जानाकि ये जैन है। इसके साथ संस्कृत भाषामें मेरा जय होना अति कठिन है। वास्ते जैनका पक्ष ग्रहण करके वाद करगा तो ये खंडन नहीं कर सकेगा। पोट्टशाल कहने लगा। संसारमें दो पदार्थकी राशि है, एक पुण्य और एक पाप, वैसे रात्रि और दिवस, वैसे आकाश और पाताल, वैसेही जीव और अजीव इत्यादिक दो पदार्थकी राशि है। तब रोहगुप्त बोला पदार्थकी तीन राशि है। अतीत अनागत और वर्तमान, वैसेही स्वर्ग, मृत्यु और पाताल, वैसेही जीव, अजीव और नोजीव इत्यादि वदन नोंवा जीव नो जीवेति

स्थापितवान्। तब पोट्टशालने कहा कि नोजीव कौन ? रोहगुप्तने कहा नोजीव गिरोळीकी पुछडी तुटने बाद हिलती है, उसे जीवभी न कहना, अजीवभी न कहना, उसको तो नोजीव कहना। पश्चात् परिव्राजकने सात विद्याए छोडी, तब रोहगुप्तने उसका घात करनेवाली प्रतिपक्षी सात विद्याए छोडी, परिव्राजकने गर्दभी विद्या छोडी, उसे रोहगुप्तने रजोहरणसे करके जीतली। अन्तमें जयपताका प्राप्त करके गाजते वाजते गुरुके पास आये। गुरुने कहा हे वत्स ! ठीक किया कि वादीको जीतकर आया। किंतु जीव अजीव और नोजीव कहासो उत्सूत्र प्ररूपण किया अतएव राजाके सभामें जाकर खमावो। अभिनिवेश नामक मिथ्यात्वके उदयसे गुरूका वचन न माना। गुरूने कहा तू न शरमा जा वहा जाकर मिथ्या दुष्कृत दे। वारवार गुरूने कहा तब खेदातुर होके धृष्ट धनकर कहने लगा कि, राशि तीन है इसमे कोई दोष नहीं है। तब गुरू और शिष्यमें वाद हुआ। गुरु शिष्य राज दरवारमें गये, राजाके समक्ष शिष्यके साथ वाद करनेका प्रारंभ किया। वाद करते २ छ मास व्यतीत होगये तब राजाने कहाकि, आपकी [illegible] और मेरे तो राजकार्य विगडते हैं [illegible] पधारो। श्री गुरूने कहा कल [illegible] परिवार युक्त व[illegible] दे। तब [illegible]

नाना प्रकारके जीव बताये। गुरुने कहा अजीव दे। इस मुताबिक कहनेपर उसने घट, पट, दंडादि पदार्थ बताये। गुरुने कहा नोजीव दे। तब धनिकने कहा नोजीव तीन लोकमें नहीं है, कहांसे लाकर दू! इस मुताबिक ४४०० प्रश्नोंसे रोहगुप्तको निरुत्तर किया, अपने गणमेंसे निन्हव मानकर निकाल दिया। उसने वैशेषिक मत प्रगट किया, छ पदार्थ स्थापन किये।

सप्तम निन्हव वृत्तांतः—श्रीमन् महावीर स्वामीके निर्वाण बाद ५८४ वर्ष गये पीछे श्रीमाळव देशमें दशपुर नामा नगर (आधुनिक मदसौर) में श्री आर्यरक्षिताचार्य दशोनदश पूर्वधारी श्रुतकेवली युगप्रधान हैं। वे सोमदेव नामक ब्राह्मणके पुत्र थे, उनोंकी माता रुद्रसोमा परम श्राविका थी। माता पुत्रको कहने लगी हे पुत्र! तू मेरे कहनेसे दृष्टिवाद पढकर आवे तो मैं खुशी होऊ। माताके वचनसे उनोंने तोसलीपुत्राचार्यके पास दीक्षा अंगीकार की। श्री वयरस्वामी—वज्रस्वामीके पास दशोनदश पूर्व पढे। वे आर्यरक्षितके तीन शिष्य हैं। एक दुर्बलिका पुष्पमित्र युगप्रधान, फल्गुरक्षित और गोष्टमाहिल। ऐसेमें मथुरामें अक्रियवादीमत प्ररूपक हुआ। उसका प्रतिवादी कोई नही है। वहा (मथुरा) के संघने आर्यरक्षित सूरीजीको विनति की। वहां गोष्टमाहिलको वाद लब्धिमान जानकर भेजे, उनोंने वहां जाकर उसका पराजय किया। वहांके लोगोंने उनोंको चतुर्मास रखे। फल्गुरक्षित शिष्य श्री आर्यरक्षितके लघु

गोष्टमाहिल मामा है। श्री दुर्बलिका पुष्पमित्र साधु नव पूर्व पर्यंत पढे, परतु भूल जाते हैं। तब आचार्य श्री आर्यरक्षितने जानाकि, आजसे दिन प्रतिदिन बुद्धि कम होती है वास्ते श्री आचारांगादिक सिद्धान्तके अनुयोग, व्याख्यान, टीका और निर्युक्ति आदिक जो सिद्धान्तोंमें थीं वे सिद्धान्तोंसे अलग २ करके पुस्तकमें लिखी। अर्थात् जो टीका निर्युक्तिकादिक मे आचारांगादिकसे प्रथम लिखे दिखाई देते है । नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुढ, एवभूत एव सात नयका व्याख्यान सूत्रमें विस्तारसे था, वे सूत्रमें गोपन किया । शिष्य तीन प्रकारसे कहे हैं। परिणित, अपारिणित, और अति अपरिणित ये तीन जानना । परिणित शिष्य वे उत्सर्ग, अपवाद, निश्चय व्यवहार मागे सब समझे । अपारिणित वे नय निक्षेपें न समझे । समझ न होते अपनेको प्रज्ञ माने वे अति अपारिणित शिष्य कहिये। परिणित शिष्यभी कलिकालके योगसे विस्तार पूर्वक व्याख्यान न कर सके । श्री आर्यरक्षितने दशपुर नगरमें अपना आसन्न मरण जाना, और अपने पाट उपर किसको स्थापन करना उसकी चिंता करते हैं।

यत

चूढो गणहर सद्दो, गोअम माईहं धीरपुरिसेहिं ॥
जो त ठवेइ अपत्ते, जाणंतो सो महा भावो ॥२॥

इस प्रकार विचार करके सकल संघ बुलाया, उसके सामने सूरिने कहा दुर्बलिका पुष्पमित्रको आचार्यकी उपाधि देना योग्य है। एवं सकल संघने गुरू वाक्य स्वीकृत किया। तब श्री आर्यरक्षित सूरिने दुर्बलिका पुष्पमित्रको स्वपदपर स्थापन किये। दुर्बलिका पुष्पको गुरूने कहा हे वत्स! जैसे—मैं गोष्ठमाहिल इत्यादिकका लालन पालन करता था, वैसा तुमनेभी करना। गुरूने फल्गुरक्षितको कहाकि, तुम जैसे मेरे साथ वर्तते थे वैसे दुर्बलिका पुष्पाचार्यके साथभी वर्तना। श्री आर्यरक्षित सूरि अनशन करके देवलोकमें गये। गोष्ठमाहिल गुरूका स्वर्ग गमन सुनकर सत्वर यहा आया। उसने मनुष्योंको पूछाकि किसको गण स्थापन किया? मनुष्योंने घृत, घटादिक दृष्टांत पूर्वक दुर्बलिका पुष्पमित्रको आचार्य पद दिया। एव सविस्तर कह सुनाया। गोष्ठमाहिल अलग उपाश्रयमें उतरा, वहा कितनाक समय [illegible] उपधि रखकर दुर्बलिका पुष्प उपाश्रयमें आये सर्व [illegible] अभ्युत्थान किया। आचार्यने कहा अलग उपाश्रयमें क्यों [illegible] हो? यही रहो। गोष्ठमाहिल आचार्यके [illegible] आप जहां उतरे थे वहां जा रहे अलग [illegible] चित्तको व्युद्ग्राहित करने लगे। परन्तु [illegible] कार नहीं करता। एक दिन [illegible] करते है, सर्व साधुओंको [illegible] अर्थपौरुषी किये बाद [illegible]

कर्म प्रवाद पूर्वमें कर्मकी व्याख्या है, वहां जीव कर्मका किस प्रकार बंध है ? आचार्य कहते हैं १ बद्ध २ स्पृष्ट ३ निकाचित भेद करके आत्मा और कर्मका बंध है। इस प्रकार आचार्यने तीन भेदोंका प्रतिपादन किया। नजदीकके उपाश्रयमें रहनेवाले गोष्ठमाहिल्ने प्रश्न और उत्तर सुना। वहां रहके उसने कहा ऐसा हमारे गुरु पास हमने श्रवण नहीं किया। यदि कर्मबंध बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित हो तब आत्माका मोक्ष न हो। तब विंध्य नामक शिष्यने कहा किस रीतिसे कर्मबंध बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित होता है ? गोष्ठमाहिल्ने कहा'—

श्लोक

यथा कंचुकः कंचुकिशरीरं स्पृशति तथा कर्मः ॥
आत्मप्रदेशान् स्पृशति न पुनः क्षीरनीरन्यायेन ॥

जैसे मनुष्य कंचुक पहरे, अथवा पुरुष जामा पहरे तद्वत् आत्मा और कर्मका संबंध है। विंध्य साधुने कहा ऐसा सुना नहीं। फिर प्रत्याख्यान प्रवाद नवम पूर्व सुनते प्रत्याख्यानका अधिकार आया है। जब साधु दीक्षा ले तब

" करेमिभंते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि

करंतंपि अन्नं न समणुज्जाणामि तस्स भंते पडि-
क्कमामि नंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ”

यहां जावज्जीवाए पद न कहना। ए पद कहते साधु सा-
ध्वीको दोष लगता है। सबब कि जीना वहां तक सावद्य यो-
गका पचख्खाण और मृत्यु बाद खुला। तब आशका वाछाका
दोष लगता है। परभवमें जाऊंगा भोग भोगऊगा, ऐसी शका
रहती है। इस लिये जावज्जीवाए ये पद न कहना। ये वचन
विंझस साधुने नहीं माना। श्री दुर्बलिका पुष्पमित्र आचार्यको कहा
कि गोष्ट माहिल ये ऐसी प्ररूपणा करता है। कर्म तथा पचख्खाण
सबधी विपरीत प्ररूपणा सुनके आचार्यने कहाकि गोष्ट माहिल
विपरीत प्ररूपणा करता है, तब संघको संदेह पडाकि आचार्य
कहते है वे सत्य है, अथवा गोष्टमाहिल कहता है वे सत्य? श्री संघने
शासन देवीका स्मरण किया, और श्रीसीमधर स्वामी पास भेजी,
देवीने वहां जाकर श्रीसीमंधर स्वामीसे पूछा। श्री सीमंधर स्वामीने
कहाकि गोष्टमाहिल सातमा निन्हव है, उत्सूत्र भापी है। श्री
दुर्बलिका पुष्पमित्र युगप्रधान हैं और सत्यवादी हैं। ये वचन
सुनके शासन देवीने आकर संघको कहे। परन्तु जो कठिन कर्मी
जीव थे उन्होंने न माना, ये देवी झूठ बोलती है। श्री सीमधर
स्वामीके पास जाही न सके। अबद्धक मत प्ररूपक सातमा
निन्हव गोष्टमाहिल हुआ।

मणुस्साय सेकिंतं समुच्छिम मणुस्सा कहिणं भंते समुच्छिम मणुस्सा समुच्छति गोयमा अतो मणुस्स खित्ते पणयालीसाए जोयण सतसहस्सेषु अड्ढाईज्जेसु दीवसमुद्देसु पणरस कम्मभूमिसु तीसाए कम्म भूमिसु छप्पण अतरदीवएसु गर्भ वक्कंतिय मणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा १ पास वणेसुवा २ खेलेसुवा ३ सिंघाणएसुवा ४ वतेसुवा ५ पित्तेसुवा ६ पूएसुवा ७ सोणिएसुवा ८ सुकेसुवा ९ सुकपुग्गल परिसाडेसुवा १० विगिय कलेवरेसुवा ११ थीपुरिस संजोएसुवा १२ नगर निद्धमणेसुवा १३ सव्वेसुचेव असुयएसुवा १४ एथ्थणसमुच्छिम मणुस्सा समुच्छति अगुलस्स असखज्जइ भाग मेत्ताए । ओगाहणाय असण्णी मिच्छादिट्ठी सव्वाहिं पज्जतीहिं अपज्जत्तगा अतो मुहुत्ताउया चेव कालं करंति सेत्तं समुच्छिमा मणुस्सा"

इत्यादिकसे सिद्ध होता है कि, चतुर्दश स्थानमें संमुछिम उत्पन्न होते हैं ।

एव अपेक्षासे कहना योग्य है । स्यात् अनेकांतार्थ वाची अन्यय है । यस्य धर्मस्य अपेक्षा यदपेक्षा अपेक्षा अर्थात् अन्य धर्मको दृष्टिमें रखना । अन्य धर्मका उपयोग रखके वोलना ये धर्म स्याद्वाद जानना ।

यत·

य पुरुप पिता ज्ञेय· पुत्र सएव कथ्यते ॥
भागिनेयो भवेद्यस्तु मातुलोऽपि स एवहि ॥१॥

एक अर्हद्दास नामक लडकेका पिता नामा जिनदास है, वे मीनदासका भांजा है, और वेही जिनदास वीरदासका मामा है । वेही जिनदास सुरचद नामके शेठका पुत्र है । जैसे एक हि जिनदासमें पिता, पुत्र, मातुल, भागिनेय रूप धर्म अपक्षासे रहे हैं । वैसेही एकही पदार्थके अदर अपेक्षासे धर्म रहे हैं । जैसे पितृत्वादि धर्म एक द्रव्यमें रहे हैं, वैसे अनत धर्म रहे जानना । परन्तु एक शब्दसे नहीं कहा जाय । जो पर्याय आविर्भावसे प्रगटपने है तथा तिरोभावसे पर्याय है । वे अस्ति नास्ति रूपसे ग्रहण होता है । परतु एकान्तसे कहा जाय नहीं । स्यात् पदसे करके सर्व धर्मोंका कथचित् ग्रहण होता है । उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे करके चाहे क्रोड भांगे हो परतु वे सर्वका सप्तभगीमें अतर्भाव होता है । वे सप्तभगी वताते हैं ।

" स्यादस्त्येव घट १ स्यान्नास्त्येव २ स्या-

दवक्तव्य ३ स्यादस्त्येवस्यान्नास्त्येव ४ स्यादस्त्येव स्याद्वक्तव्यम् ५ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यम् ६ स्यादस्त्येव स्यान्नास्तेव ७ युगपदवक्तव्यम् " ॥

स्यात् अनेकातवाची अव्यय है। एकात वे सर्वथा पर पर्यायका निषेध करना, जो सर्वथा पर पर्यायका निषेध न करना वे अनेकात कहीये। अपने द्रव्य, क्षेत्र, भाव, काल की अपेक्षासे घटका अस्तित्व है। घटमे वर्णादिक धर्म है, उसमें कृष्ण वर्ण एक हिस्से काला, दो हिस्सोंसे काला, यावत् असंख्यात और अनंतगुण काले वर्ण रहे हैं। वे गुणका घटमें अस्तित्व है। दूसरा रक्त घट उसमें स्थित वर्ण, गंध, रस, स्पर्शका श्याम घटमें नास्तित्व रहा है। अस्ति और नास्ति एक समयमें स्थित है, वे भी एक समयमें कथन कीये जाँय नहीं। यावत् असंख्यात समयमें भी नहीं कह सके। वास्ते ये दो भागे एक समयमें अवक्तव्य है। नास्तित्व धर्मभी अवक्तव्य है। अस्तित्व और नास्तित्व धर्मभी अवक्तव्य हैं, एव द्रव्यसे, कालसे, भाव से, क्षेत्रसे सप्तभंगी जानना।

द्रव्यसे घट मिट्टी, तावा–सोना–चांदी–आदिका जानना। क्षेत्रसे अमुक नगरका, कालसे वर्षाकालका, शीतकालका, उष्णकालका इत्यादिक। भावसे नील, पित–पीला–कृष्ण, रक्त और श्वेत इत्यादिक जानना। " द्रव्यतः मृन्मयः ताम्रमयः स्वर्णमयः क्षेत्रतः

तप जप क्रियाथी जरा, छूटे नहीं मन क्लेश॥११॥
आत्म मंदिरमां सदा, मन कपि करे न वास ॥
ध्यान खीलो ज्ञान सांकळे, मनकपि बांधो खास॥१२॥
विकल्प मन ससार छे, चतुर्गति भटकाय ॥
विकल्प रहितमन जब हुए, तब शिवसुख झट पाय१३
ज्ञानी मन वशमां करे, रागद्वेष करे नाश॥
धर्म ध्यान आरूढ थइ, तोडे कर्मनो पास ॥१४॥
द्रव्य योगनुं ज्ञान ज्यां, स्पर्श रूप त्यां सुख ॥
परमात्मपद वृत्ति थकी, नाशे भवभय दु ख ॥१५॥
पढे ग्रथ पण नहीं मिटे, मोह महा जजाळ ॥
आत्म अनुभव ज्ञानथी, नाशे ते ततकाल॥१६॥

इत्यादि ज्ञानी कर्मान्त करता है। ज्ञानी आत्मसाक्षात्कारकी प्रवृत्तिमें अहर्निश ध्यानारूढ रहता है। ज्ञानीकी साध्यदृष्टि विकल नहीं होती। ज्ञानीकी आशातना न करना। द्रव्यानुयोगके ज्ञाताकोही सचे ज्ञानी जानना। ऐसे सचे ज्ञानीगुरुका सेवन करना। और उनोकी आज्ञानुसार बर्तना। परतु कुगुरुका सेवन न करना। कुगुरु काले सर्पसमान है।

यदुक्त सप्पे दिठे नासइ लोओ नय कोवि किंपि॥

अख्खेइ जो चयइ कुगुरु सप्पं हामुढा भण हतं दुठा१।
सप्पो इकं मरणं कुगुरु देह अणताइं मरणाइ ॥
तो वर सप्पं गहिओ मा कुगुरु सेवणं भद्द ॥२॥

इत्यादिकसे सिद्ध होता है कि कुगुरु पास जाना, उनोंके वचन मान्य करना, अनत ससारकी वृद्धिके लिये है। ज्ञानी कर्मसे छुटता है। आत्मस्वरूपके अनुभवी ऐसे ज्ञानी हैं। मूढ नवतत्त्वका अनजान, आत्मस्वरूपसे अज्ञात, केवल मनुष्यका शरीर पाया है; परतु द्रव्य मनुष्यपना जिसमें है, कर्मका स्वरूप समजता नहीं, व्यवहारसे करके धर्मकरणी करता है, परन्तु साध्यदृष्टि जिसको प्राप्त नहीं हुई है ऐसे अज्ञानीको देखकर शववत् ज्ञानी क्या मनमें आनद माने ? अलवत् कुछ नहो। शवमें जीव नहीं है और मूर्खमें जीव है, इतना विशेष है। प्रथम गुणथाना जिसने त्यागा नहीं वे समजता नहीं, वैसे मूढ चाहे धनिक हों, पुत्र परिवारवाले हों, देशाधिपति हों, परतु वे शव समान है। उनोंको देखके ज्ञानीके मनमें कुछ आनद नहीं होता। वे विचारे चारगतिमें पुनः पुन भ्रमण करेंगे। मूढ ससारमें हरेक वस्तुसे बाधा जाता है। राग-द्वेषका क्षय नहीं कर सक्ता, कदापि उपरसे शांत मालुम हो, तो भी वे शांत नहीं। सबबकि उसकी शातता अज्ञानसे करके है, सच्ची शान्ता बस्था ज्ञानी पाता है। मुक्तिभी उससे दूर नहीं, वास्ते ज्ञानीकी सेवा भक्ति करना उनोंका बहु मान करना। उनोंकी निंदा

करनेवाला नरक निगोदमें भ्रमण करता है। ज्ञान प्राप्त हुए बाद निंदादि सकल दोषोंका क्षय होता है, और शाश्वत अनंत सुखमय शिवस्थानभाक् आत्मा होता है। ये सोलहवें दुहेके अर्थ है।

दुहा.

ग्रहण योग्य छे आत्मधर्म, त्याज्य योग्य छे कर्म ॥
ज्ञान ध्यान विवेकथी, प्रगटे शाश्वत शर्म ॥ १७ ॥
शुद्ध स्वभावे रमणता, करतां होवे मुक्ति ॥
परभावे संसार छे, एहिज साची युक्ति ॥ १८ ॥
योग मांहि द्रव्यानुयोग, आतम अति हितकार॥
परमार्थ ग्रही भव्यात्मा, पामे भवजलपार ॥ १९॥
आतम निहाळे आत्मने, तो शिवसुखनी आश॥
परमा बुद्धि स्वात्मनी, थातां पुद्गलदास॥ २०॥
परभावे रमता थकां, परनी बुद्धि थाय ॥
परमात्ममय ध्यानथी, थातां तत्पद पाय ॥ २१ ॥
आधि उपाधि मिट गइ.   ॥

प्रगट्यो आत्म सरोवरे, चिद्घन ज्यां छे तरंग॥२३॥
ज्ञान दर्शन चारित्र पंथ, वहतां शाश्वत शहेर ॥
चिद्घन आत्मस्वरूपमय, वर्ते लीला लहेर ॥२४॥
रोग शोक उपाधि व्याधि, मोहमाया जंजाळ ॥
तेह अभावे मुक्तिमां, वर्ते मंगळ माळ ॥ २५ ॥
अनुभवपच्चीसी कही, अर्थनो अति विस्तार ॥
दाख्यो तेमां जाणजो, वासद् गाम मझार॥२६॥
कावीठाना वासी शेठ, रत्नचंद्र हितकार ॥
तेम झवेरभाई कारणे, रचना कीधी सार ॥ २७॥
संवत् ओगणीस उपरे, ओगण साठनी साल ॥
पोशवदि बारस दिने, रचतां मंगलमाल ॥२८॥
वांची धारी ग्रंथ ए, समजो आत्मस्वरूप ॥
बुद्धिसागर सुख लही, थाओ शिवपुर भूप ॥२९॥

भावार्थः—आत्माके अनंत प्रदेश है । जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं, उतनेही आत्माके प्रदेश हैं । वे प्रदेश अरूपी, अखंड, अनाशवंत, सर्वदा शाश्वत हैं । उन प्रदेशोंको छेदे तो छेदे न जाँय, भेदनेसे भेदे न जाँय । असंख्यात प्रदेश मिलकर एक आत्मतत्त्व स्वीकारा जाता है । जैसे आकाशके प्रदेश निर्मल है,

मालुम होता है, धवलरूप मालुम होता है। उससे काच यह काली वस्तु अपनेमें प्रतिबिम्बित हुई उसकर लिये खेद नहीं करता, और न धवल वस्तु प्रतिबिम्बित हुई उससे हर्षित होता है। इसी रीतिसे मनुष्य ज्ञानवान् होकर चोर, व्यभिचारी, कपटी, जुआरी, खूनीके कुकृत्य जानकर आप समभावसे रहे परन्तु द्वेषबुद्धि या तिरस्कारसे न देखे यह सारांश है। किसीके ओर तिरस्कारबुद्धि न हो वैसी प्रवृत्ति करना चाहिये। ये आत्मसाधक महापुरुषकी प्रथम पाउडी है।

द्वितीय पाउडी यह है कि, गभीर गुण धारण करके तुच्छ-बुद्धिका त्याग करना। अन्यके दोष देखनेमें आवे तो भी दूसरेके सामने न कहना वे गभीर गुण जानना। समुद्रमें जैसे गभीरता रही है, वे अपनी मर्यादा नहीं छोडता। उसमें विषभी रहा है और रत्नभी रहे हुए हैं। उसका पानी अत्यत है, परन्तु गभीर गुण चित्तचमत्कृति उत्पन्न करता है। किसीके दोष न देखना। किसीके मर्मका प्रकाश न करना। किसीकी बात जानी है और उस बातसे अगले आदमीको नुकसान होता हो तो वैसी बात दूसरे मनुष्यको न कहना। किसीके अवगुण देखनेमें आवे अपने कौवे जैसे न होना। जैसे–कौवा पशुओंके शरीरमें चादीयां पडी होती हैं, उसपर जा बैठता है वैसा अपनने न करना। गभीर हृदय रखनेसे अनेक फायदे होते हैं। गभीरकी महिमा चिंतामणिरत्नसमान है। गभीर गुणी मनुष्य

जहां जाता वहां है मान पाता है, और हृदयमें धर्मरत्न निवास करता है ।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी तृतीय पाउडी यह है कि, वैरबुद्धिका त्याग करना। धर्मरूप वृक्षको जलानेमें वैरबुद्धि दावानल समान है। सर्व जीव सिद्ध समान है। आत्माका मूल स्वभाव द्वेष बुद्धि धारण करनेका नहीं है । तो दूसरेकी ओर कैसे द्वेष बुद्धि करना चाहिये ? अलबत नहीं करना चाहिये ।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी चतुर्थ पाउडी यह है कि, जिसकी पाससे धर्मतत्त्व प्राप्त किया है ऐसे त्यागी गुरुका वचन पालना चाहिये । गुरु एक करना, जगह २ भटकते फलां साधु अच्छा, फलां साधु कैसे होंगे ? एव भटकनेसे कोई सत्य तत्त्व देता नहीं। पक्की श्रद्धा रखकर एक गुरु महाराजका सेवन करना । और पुनः २ सद्गुरुको मंगलरूप जानकर स्मरण करना, उनोंका विरह होते उनोंके कथन किये हुए उपदेशामृतसे हृदयकमलको प्रफुल्लित करना ।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी चतुर्थ पाउडी यह है कि, स्वधर्म और स्वधर्मीमें राग–प्रेम। अपने समान धर्मी मनुष्योंके उपर प्रेमदृष्टिसे देखना और उनोंको सहायता देना । वे दुःखी अवस्थामें हो तो हरेक प्रकारसे दुःखमेंसे बचानेका प्रयत्न करना। अपने स्वधर्मीयोंकी तन, मन, धनसे उन्नति इच्छना । ये गुण आते सच्चे आत्मसाधक बन सकोगे। अपने भले २ भोजन करें,

बगीचेमें सहेर करें, गाडीमें बैठे, और अपने समान धर्मिको खानेकाभी न हो, तो गाडीवाडेकी परवा वान करना ? ऐसे स मान धर्मीओंपर पुत्रसेभी अधिक प्रेम धर्मस्नेह जागृत होगा, और यानिम्यत पुत्रकेभी अधिक रीतिसे उसका भला करनेकी मरजी होगी, तब सब आत्मसाधक बनेंगे । अपने समान धर्म भाइओंको पढाना, उनोंको हरेक प्रकारसे उन्नतिके शिखरपर पहुचानेका प्रयत्न किया जाय, तबही अपने समारमें मनुष्यदेह धारण करके अपना कर्तव्य किया । अपने समान धर्मी गरीब स्थितिमें हो, अथवा मैले कुचैले हो, उनकी पोशाक भिन्न हो, अज्ञ हो, उससे उनोंको तिरस्कारबुद्धिसे न देखना । उनोंको ज्ञान देकर हरेक रीतिसे उत्तम स्थितिमें लानेके लिये प्रयत्न करना ।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी छट्ठी पाउटी गुरुभक्ति है । जिनोंसे नवतत्त्व आत्मस्वरूप सम्यक्त्वस्वरूप समझे हों, सम्यक्त्व प्रगट करने-होनेमें उपकारी बने हों, ऐसे गुरु उनोंकी आज्ञाम वर्तना । उनके संकटमें हिस्सा लेना । उनोंकी कोई निंदा करता हो तो उसको अपनी शक्ति हो तो शिक्षा या समझाकर निवारण करना । अपनी शक्ति न होतो कानमें उंगली डालकर वहांसे तुरत चले जाना । अपने गुरुकी निन्दा करनेवाला मनुष्य साधु अथवा श्रावक हो, या हरकोई हो, संबंध करना । और कदापि आजीविका [illegible]

करना पडे तोभी गुरुनिंदा तो कभी श्रवण करनाही नहीं। अपने गुरुकी सेवाभक्ति करना, त्रिकाल वंदन करना। तन, मन, और धन मानो अपने गुरूने आयत्त किये हो वैसे वर्तना। गुरूका बहुमान करना। अपने गुरुके दोष न देखना। गुरुका चित्त प्रसन्न रखना। उनोंको धर्मसाधन करनेमें हरेक प्रकारसे सहायता करना। अपने गुरुके गुण गाना, गुरुके उपर श्रद्धा रखना। उनोंका देववत् बहुमान करना। अपने गुरुकी कोई निंदा करे तो एकदम सची न मानना। सबबकि, दुनियामें इर्ष्यालु मनुष्य बहुत है कि, जिनोंसे किसीका भला सहन नहीं होता। पानीमेंसे मक्खन निकालनेका प्रयत्न करते हैं। उनोंका कथन सत्य नहीं मानना।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी आठमी पाऊडी यह है कि, इर्ष्या नामक अवगुणका त्याग करना। अन्यकी जो जीव इर्ष्या करता है वे धर्मतत्वके रहस्यको नहीं पा सक्ता। शातावेदनीय नामक कर्मसे किसी जीवको सुख संपत्ति मिले उसमें अपने इर्ष्या क्यों करना चाहिये? कर्मके आधीन है। अन्यका अनिष्ट चिंतन करनेसे कुछ अपना श्रेय न होगा। किसी लक्षाधिपतिकी अपने इर्ष्या करते लक्षाधिपति नहीं बनते। दूसरेको ऋद्धि प्राप्त हुई है वे उसके कर्मानुसार हुई है। उसमें किस कारणसे अपने जलना चाहिये? अलबत इर्ष्या करना योग्य नहीं है। ये इर्ष्या टळ जानेसे अपनेमें गुण आते हैं।

आत्मसाधक महापुरुष बननेकी नवमी पावडी यह है कि, पर निंदाका त्याग करना चाहिये। अमुक दुष्ट है, अमुक अविनयी है, अमुक मूर्ख है, अमुक दुर्जन है, एव निंदा करनेसे अपने आत्माका हित नहीं होता। परकी-निंदा करनेवाला मनुष्य चंडाल समान है। नाम देकर निंदा करना ये दुर्जन पुरुषका लक्षण है। दुर्जनका ऐसा स्वभाव है कि, सज्जन पुरुषके दोष शोधना और उनोंकी निंदासे अपना मुख अपवित्र करना। सज्जन सदा सत्पुरुषोंके गुणकी ओर दृष्टि देता है, और अवगुणके ओर दृष्टिपातभी नहीं करता। मैं गुणी, और अन्य अवगुणी ऐसा सिद्ध करनेके लिये अन्यके दोषोंकी ओर दुर्जन लक्ष्य देता है। सज्जन कभी वैसी प्रवृत्ति नहीं करता। जहातक दुर्जनपना है, वहांतक आत्मसाधक बनना महा कठिन है। दुर्जनोंकी जिव्हाए सज्जनोंके अवगुण गानेमें सर्वदा प्रयत्नवान् रहती है। जैसे-कोयलेको सो वार स्नान करावें तो भी काला रहता है वैसे-दुर्जन चाहे जितना तप, जप, क्रियाकाण्ड करे तोभी उसका हृदय श्यामका श्यामही रहता है। दुर्जनोंका आदर सत्कारभी कपटयुक्त होता है, उनोंकी चाल चलनभी कपटजालमें फँसाती है। ऐसे निंदक दुर्जनोंकी निदासे सज्जन जहातक भय रखे वहातक आत्मसाधक महापुरुष बनना अत्यत कठिन है। आप सत्कार्यमें प्रयत्न करता हो, उसको देखकर दूसरा निंदा करे, तो भी अटलवृत्तिसे महापुरुष अपना कार्य सिद्ध करता है।

मरणात कष्ट प्राप्त हो तोभी सत्कार्य नहीं छोडता । दुनिया दोरगी है, कोई कैसे बोले, कोई कैसे बोले उससे कभी स्वकार्यका त्याग न करना । स्वकार्यमें अहर्निश ज्ञान, ध्यानद्वारा प्रयत्न करे करना; ये सज्जन पुरुषका लक्षण है । सज्जन पुरुषका हृदय वज्रवत् अभेद्य है । वे किसीसे भेदा नहीं जाता, और जब हृदय भेदा जाता है, तब आत्मसाधक बनना कठिन है । निंदा नामक दोष त्याग करने योग्य है । वे त्यागी गुण स्तुति सज्जनका करना । ये सर्वार्थ महापुरुषका लक्षण है ।

क्षमा—आत्मसाधक महापुरुषने क्षमा करनी ये धर्मरूप महेलमें चढनेकी दशमी पाउडी है । सर्व गुणोंमें क्षमा प्रधान है । बिना क्रोधको जीते क्षमा गुण प्रगट नहीं होता । कोई असत्य वचन बोले, कोई अपना बुरा बोले—करे तथापि उसके उपर एकदम न तप जाना । मनमें विचारना कि, ये बिचारा क्या करे ? अज्ञानवश मुखसे वे असत्य वचन निकालता है । यदि उसमें ज्ञान होता तो ऐसे वचन न निकलते । मनुष्य मात्र भूल करता है । वे भूल तरफ दृष्टि देकर यदि तप जावें, क्रोधायमान हो जावें, तो उससे क्या अन्तमें इष्टफल सिद्ध होनेवाला है ? नहीं-नहोगा । तो क्रोध क्यों करना चाहिये ? एक दिनमें कार्यवशसे अनेकवार तप जाना पडता है वे ठीक नहीं है । क्रोध होनेकी कुटेव उपर लक्ष देना । और क्रोध होनेके समयमें मौन रहकर असभ्य वचन न [illegible] । *मनमें विचारना कि, हे चेतन !*

तू क्रोध करके आप कर्म बांधता है, और दूसरेभी बांधेंगे। जलते अग्नि समान क्रोधका त्याग करके क्षमारूप सुधासें आत्माको सिंचन करना कि, जिससे अन्तमें स्वगुण प्रगटकर शास्वत मोक्ष पद पा सके।

समभाव—मोक्षपद मद समभावको आत्मसाधक महा पुरुषने धारण करना चाहिये। जहांतक समभाव नहीं आया वहातक मुक्ति दूर है। राग–द्वेष और मोह–मायाका जोर हठनेसे, जडचेतनका लक्षण जाननेसे, जडवस्तुको अन्य जाननेसे, शत्रु मित्रके उपर होती राग–द्वेष बुद्धिका क्षय होता है–कनक और पाषाण, तृण और मणि उपर समभाव दृष्टि रहनी है। तृणभी पुद्गल है, और मणिभी परवस्तु है, वे वस्तुत: मेरी नहीं है। तो उसके उपर कैसे मणि भारी और तृण हलका ऐसी बुद्धि धारण करें? अलबत ऐसा नहीं होना चाहिये। एव मनमें निश्चय होनेसे समभाव प्रगट होता है। ए गुण प्रगट होनेके बाद सहज-समाधि उत्पन्न होती है। ए ग्यारहवी पाउडी आत्मसाधक महापुरुषोंने अंगीकार करना योग्य है।

आत्मसाधक महापुरुषों–ने मन चचलतात्यागरूप बारहवी पाउडी धर्मप्रासादारोहण लिये है–मोक्ष प्राप्ति लिये जो क्रिया करते हैं, हरेक कार्यमें चांचल्यताका त्याग करना चाहिये। प्रभुकी पूजा करनेके लिये मदिरजीमें जावें, वहां हा हु करके गरबड सरबड करें, पूजा करते समय चित्त कहीं भटकता हो,

नवकार वाली (माला) गुनते समय चित्त अन्यत्र हो, क्या गुनता हूं, उसकाभी आपको बराबर भान न हो, यह सब चंचलताका कारण है । चित्तकी चंचलतासे वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता ।

प्रतिक्रमण सूत्र, जीवविचार, नवतत्त्व, व्याकरणका अभ्यास करते हुएभी चचलतासे यथार्थ अवबोध नहीं होता । सांसारिक कार्यमें भी चचलतासे यथायोग्य कार्यकी समाप्ति नहीं होती । तो फिर धर्मकार्यमें चचलता करनेसे आत्मसाधक महापुरुष नहीं हो सक्ता । प्रतिक्रमणादि क्रियामें जो चंचलता होती है निवारण करना । मनकी एकाग्रता करनेसे चाचल्यता टलती है । प्रतिदिन अरिहत बोलकर तीन चारवार नवकारवाली गुन जावे, और फिर मनमें चिंतवेंकि, मैंने इतने वर्षतक नवकारमत्रका स्मरण किया, परतु ये इष्टमद नहीं हुआ । ऐसी शंका करें तो युक्त नहीं है । सबबकि अरिहत ये शब्दका भावार्थ समजना चाहिये । श्रद्धा, भक्ति, विधि, स्थिरतासे ये महामत्रका स्मरण करते अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है । बहुत कर्मों क्षय होता है, इसमें किसी बातका सदेह नहीं है । यदि मुक्तिकी अभिलाषा हो तो हरेक क्रियाए स्थिर चित्तसे करना । उसके लिये महात्मा पुरुष कहते हैं कि:—

जब लग मन नहीं आवे ठाम,

तब लग कष्ट क्रिया सवि सूनि
ज्यु झांखर चित्राम ॥ जब ॥

जब तक मन स्थिर नहीं होता तब तक सर्व क्रिया शून्य जानना । राखोडेकी भूमिमें जैसे—चित्रामन पडे वैसे—बिना स्थिर चित्तके कष्ट क्रियाभी यथेष्ट फलप्रदा नहीं होती । आत्मसाधकमहापुरुष मन स्थिर करनेके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्न करते हैं। एकान्त स्थानमें रहते हैं, विषयोंको विष समान मानकर मनमेंसें उसको दूर निकालते हैं। क्षण क्षणमें होती हुई मनकी चचलताकी ओर उपयोग देते हैं । अभी मनमें क्या चिंतन होता है, अभी मन किस विषयप्रति गमन करता है, वे उपयोग द्वारा देखते हैं, जो जो कार्य करते हैं, उसमें मनकी स्थिर वृत्ति करता है । धामधुममें धर्म समजकर कितनेक मनुष्य वे कार्यका यथायोग्य भावार्थ बिना जाने चचलतासे कार्य किया करते हैं । वे मनुष्य इष्ट कार्यकी निष्फलतामें स्वकाल निर्गमन करते हैं, और मनुष्यभवकी साफल्यताको कलंकित करते हैं ।

सत्सगति—सत्पुरुषोंकी सगति करना, सत्पुरुष स्पर्श मणि समान है । दुर्जनोंकी प्रकृति सुधारनेवाली सत्सगति है, लक्ष-पापोंको निवारण करनेवाली सत्सगति है । सत्सगमसे जितना हित होता है उतना दूसरे किसीसे नहा होता । चडकौशिक सर्पभी श्रीमन् महावीर स्वामीकी सत्सगति पाकर सद्गुणसेवन करनेवाला हुआ । गौतमादि ब्राह्मण शास्त्रार्थ

प्रभु पास आये तब अभिमान दूर हुआ और निरभिमानता प्रगट हुई। अर्जुनमाली समान जीवभी परम तारक श्रीमन्महावीरके उपदेशामृतसे गुणी बने। लोगोंने की हुई निंदा-अवगणना सहन करी वे भी सत्संगतिका फल है। सत् संगतिका महिमा अपार है। मुखसे नहीं कहा जाय। वास्ते भव्योंने व्यभिचारी, लुचे, निंदक, मत्सरी, चोर, ठग, आदिकी कुसंगति त्यागकर जिसके पास रहनेसे सद्धर्मकी प्राप्ति हो, सद्गुण आवे वैसेकी संगति करना। साधु हो अथवा श्रावक हो दोनोंको सत्संगतिकी आवश्यकता है। सत्संगति रूप तेरहवीं पाउडी आत्मसाधकोंने धर्म प्रासादपर चढनेके लिये अंगीकार करना चाहिये।

निष्पक्षपात—आत्मा परमात्मरूप बने एव इच्छनेवाले आत्मसाधकोंने दृष्टिरागसे किसीके पक्षपातमें न पडना।

स्वज्ञातिवाला हो या पर हो, परंतु जो आत्म हितकारक हो, एव बोलता है तो उसका वचन अंगीकार करना। कोई अपना सगा हो, प्यारा हो, अगर शिष्य हो अथवा अपने गच्छका हो, और उसका कथन युक्तिहीन राग-द्वेष वृद्धिकारक हो अंगीकार न करना। उभय पक्षवाले किसी कारणसे चर्चा करते हो, तो उसमें श्री जिनेश्वरकी आज्ञासे सहित जिसका वचन हो उसका वचन अंगीकार करना, परन्तु मेरा माना हुआ असत्य हो तो भी सत्य मानना और अपका सच्चा हो तो भी झूठा मानना, ऐसी पक्षपात बुद्धिका त्याग कर निष्पक्षपात गुण धारण करना चाहिये।

क्रोध शान्त हो, मोहरूप मदीराका नाश हो, विषय वासना टल जाय, सब प्राणीपर प्रेम प्रगटे, अहभाव और ममता मिट जाय, अनादि कालसे जो अधर्म उसकी प्रवृत्तिका रोध हो, आत्मा दयासागर बने, वैर तथा विरोध टले, कर्मस्वरूप जाननेमें आवे, द्रव्य गुण पर्यायकी माहिती हो, आत्मामे स्थित अनत गुणोंका आविर्भाव हो, एकातपना टले ऐसे ग्रंथ वाचना। पुन॰ २ ऐसे ग्रथोंका अवलोकन करना। अत एव आत्मतत्त्व पहिचाना जायगा, विवेकरूप दीपक हृदयमे प्रगट होगा और अज्ञानरूप अधकार टल जायगा। बहुत मनुष्य अपनी विद्वत्ता दिखाने, वाग्जालकी रचना करके अन्यको मोहमें डालते हैं। और ज्ञानको अपनी आजीविकाके लिये समजते हैं। वे आत्म साधक नहीं बन सक्ते। कितनेक विद्याभ्यास करके वाद विवाद कर क्लेश वृद्धि करते एक दूसरेको दोष देते हुए अपनी विद्याकी साफल्यता समजते हैं। कितनेक ऐसा समजकर ज्ञानाभ्यास करते हैं कि, ज्ञानाभ्यास करेंगे तो लोगोंमे अपनी प्रतिष्ठा होगी, परन्तु उसका शुद्ध फल मुक्ति पाना उसपर लक्ष्य नहीं देते। कितनेक अपने मतकी वृद्धिके लिये ज्ञानाभ्यास करते हैं, कितनेक तत्त्व क्या है, ससारमें क्या सार है, क्या कर्तव्य है, क्या हर्तव्य है, उसके उपर लक्ष्य देकर ज्ञानाभ्या[illegible]

[illegible] कर कहना पडेगा कि, ज्ञानदान

[illegible]

प्राणी मरते हैं उनोंका रक्षण कर, उसके प्राण बचाना ये द्रव्य अभयदान। मिथ्यात्व रूप अंधकारको दूर करनेमें सूर्य समान, कर्मरूप पर्वतको तोडनेमें वज्र समान, कर्मरूप काष्ट जलानेमें दावानल समान, समकितरूप अंकुर उगानेमें मेघ समान, कर्म रूप लता काटनेमें कुठार समान, ऐसा ज्ञानदान मुक्तिसुख देनेमें चिंतामणिरत्न समान है, ज्ञान ये आत्माका मुख्य गुण है। सम्यग् रीतिसे जो सर्व पदार्थस्वरूप जाननेमें आवे तो कर्मप्रकृति आत्मासे दूर होगी। त्याग करने योग्य पुद्गलास्तिकाय है। अंगीकार करने योग्य आत्मगुण है। जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व जानने योग्य है। वास्ते पुद्गल संग निवारण करके भयान्तकर लोकाग्रसिद्धि सौधमें वास करना यही मेरा इष्ट कर्त्तव्य है। पर घर भिक्षा मागते अनत काल गँवाया, पुद्गलकी झूठ प्रतिदिन क्षुद्रता है, मैंने अनंति वार पर पुद्गल आहार रूपसे भक्षण किया। जहांतक आत्मा अपने घरमें रमण नहीं करता, पर घरमें रमण करता है, आशा दासीके वश होकर अपनी चेतनारूप राणीके साथ रमण नहीं करता, वहांतक मुक्ति सुख प्राप्त करना दुर्लभ है। जहांतक हास्य, प्रपच, विश्वासघात ये दुर्गुणोंके रगमें आत्मा रहता है वहांतक शुद्ध आत्मसाधकपनना दुर्लभ है। दुर्लभ ऐसा जो आत्मस्वरूप महा पुरुषको सुलभ होता है। विवेकी पुरुष ससारमें रहकर मोहक पदार्थोंसे गभराता नहीं। जैसे पक (कादव)मेंसे जलकी सगतिकर-

कमल उत्पन्न होता है, परन्तु जलसे अलग रहता है। ससारी जीव आत्मस्वरूपको समजकर ससारमें रहकर सासारिक कार्य करते हुएभी वे उससे अलग–भिन्न रहता है, परतु उसमें मोहित नहीं होता। विषय विष समान है जो कि, जीवको चार गतिमें भ्रमण करवाते हैं। भव्यात्मा विषयोंसे नहीं गभराता, और विवेक दृष्टिसे सन्मार्गमें प्रवृत्ति करता है, और मिथ्यात्व मार्गमेंसे निवृत्त होता है। अध्यात्म शाति इच्छकोंने मैं कौन हूँ? मेरा कौन है? मेरा स्वरूप क्या है? मैं कहांसे आया? कहां जाऊगा? मेरी साथ कौन आवेगा? मैं मोहमायामें कैसे फँसा हूँ? मैं पाप कर्मसे क्या इष्ट फल लेनेवाला हूँ? इत्यादिकका मनमें विचार करना। फिर चित्तमें ऐसा विचार करनाकि, यह जगत् सब मायाजाल है, स्वप्नसमान है,मेरा कोई नहीं है, मैं दुनियाका नहीं, मैं कर्मवश चारगतिमें भ्रमण करता हूँ? जो २ पदार्थ आखसे दिखाई देते हैं, वे क्षणिक है, इद्रधनुष्यवत् मैं सांसारिक पदार्थोंको अहबुद्धिसे मेरे कैसे मानु? और उसकी प्राप्तिके लिये राग–द्वेषमय कैसे बनुं? ससारमें अनेक हो गये, किसी वस्तुको साथ नहीं ले गये, तो मैं कौनसी वस्तु साथ ले जाऊगा? ससार जलते अग्निके समान है, उसमें प्रमाद करके मैं कैसे बैठ रहु? वार २ मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। शरीरका विश्वास नहीं, आयुष्यका भरोसा नहीं, लक्ष्मी सध्याके रग समान क्षणभगुर, है किसीके पास स्थिरतासे रही नहीं आर

रहनेवाली नहीं । सत्कार्यमें लक्ष्मीका व्यय करना, शरीरसे धर्म-कार्य सेवन करना । वाचासे परमात्माके गुणोंकी और गुणि पुरुषोंकी स्तुति करना । वाणीसे किसीके मर्म प्रकाशित न करना । मिथ्याकार्यमें वाणीका उपयोग करना । यदि बोलनेसे लडाई टटा हो तो वे भाषण करनेकेवजाय मौन रहना ये अधिक श्रेयस्कर है । अधिक बोलनेसे कुछ आत्महित नहीं होता, परतु किसी कार्य परत्वे बोलना हो तो विचारकर बोलना । मौनावस्थामें कार्यप्रसगसे योग्य समयमें सभाषण करना और मौन रहनेके समयमें मौनभी रहना । ज्ञानी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर हरेक कार्यमें प्रवृत्ति करता है । ज्ञानदृष्टिसे सत्यासत्य स्वरूप जानकर विवेकी सत्यमार्गमें प्रवर्तता है। हजारों सकट पडे तो भी विवेकी सत्यमार्गसे भ्रष्ट नहीं होता । विवेकीका लक्षण ये है कि, अकृत्यसे दुर हो कर सुकृत्यमें प्रवेश करता है । क्लेशके समयमें दुःखके, वक्तमें, रोगी अवस्थामें विवेकी विवेक दृष्टिसे अकार्यमें प्रवर्तता नहीं। विवेकी मनुष्य राजकथा, भक्तकथा, देशकथा, और स्त्रीकथा, अनर्थदंडसे दडा नहीं जाता । इस संसारमें मनुष्यभव पाकर धर्मकृत्य करके चारगतिमें भटकते आत्माको छुडाता हैं । और मोक्ष स्थान प्राप्त करे ऐसी विवेकीकी अतदृष्टि स्फुरती है । मोहके प्रसगमेंभी विवेकी मोहके साम्राज्यमें फँसता नहीं । विवेकी धैर्य प्रवृत्तिवान् होता है । विवेकी मनुष्योंके कृत्योंको देखकर, अविवेकी गण उसकी

निंदा करे, उसको पागल कहे, मूर्ख कहे, तो भी उससे विवेकी नहीं डरता । कोई शरीरके टुकडे २ भी करडाले विवेकी सभा मेंसे पराङ्मुख नहीं होता । विवेकी मनुष्य सिंह समान धैर्य गुण धारण करनेवाला होता है । विवेकी मनुष्य अटलवृत्तिमे निर्धारित्त कार्य सिद्ध करता है । विवेकीके हृदयमें निरर्थक वि चार निवास नहीं करते । विवेकी पुरुष जोर विचार करता है, उसकी समालोचना करता है, और दृढ संकल्पमे किये हुए वि चारोंको दृढ कर तत्कार्य सिद्धिमें प्रवर्तता है । लोकविरुद्ध का र्यको विवेकी नहीं आचरता । विवेकी समयको जाननेवाला है ।

विवेक एक पुकार करनेसे वा उस विषयमें लम्बे चौड़े भाषण-व्याख्यान देनेसे कुछ विवेक गुण प्रगट हो गया, ऐसा मानना युक्ति रहित है । विवेक गुणके जो लक्षण हैं, उस मुताबिक व र्तनेसे विवेकी बन सक्ता है । सत्यदेव, सत्यगुरु, सत्यधर्मकी श्रद्धा करता है, पाप, पुण्य, आश्रव और बंधनत्व त्याग करने योग्य हैं । ये आत्माको हितकारक नहीं है । एवम् विवेकी श्रद्धा हृद यम धारण करता है । यदि विवेक गुण प्रगट करना धारे तो, मैं विवेक कब पाउंगा ? वे भावना करनेसे विवेक गुण प्रगट होगा । इस दुनियामें विवेक चक्षु रहित जो मनुष्य हैं अंध स मान जानना । हजारों प्रयत्न करके विवेक गुण प्राप्त करने उद्यम करना । मैं विवेकी हूँ २, मेरे आत्मामें विवेक स्थित है, ये वाक्यरूप चाबी-कुंचीसे अत्यंत गुण होगा । कंजूसने ऐसी

भावना करनाकि मैं दातार हूं २, अनतगुण मेरेमें स्थित हैं; मैं अन्यको दान क्यों नहीं देता ? क्या दान करनेसे खाली हो जाऊगा ? नहीं, नहीं हो जाऊगा। तो दान देनेमें मैं क्यों इच्छा नहीं करता । ऐसी भावना करनेसे कंजुसाई दूर होगी। विवेकी आत्मसाधक महापुरुष अविवेकीकी ओर तिरस्कारदृष्टिसे नहीं देखता, और अविवेकीको देखकर क्रोध द्वेष भी नहीं करता। अपना पुत्र अंध है, देखता नहीं, उससे क्या? उसको तिरस्कार-दृष्टिसे देखना योग्य है? किसी मनुष्यका पुत्र रोगी है, उसके उपर द्वेष करे, क्रोधायमान हो जाय, यह क्या पिताको योग्य है? नहीं। अपने पुत्रका रोग दूर करने प्रयत्न करना यह ही योग्य है। वैसेही अविवेकीका अविवेक दूर करना उसको विवेक देने प्रयत्न करना वेही विवेकीका भूषण है। विवेक देना, वे रूप कार्य अपनेसे न बने तो माध्यस्थता धारण करना, उसकी उपेक्षा न करना येही विवेकीकी प्रवृत्ति है। एक गेहुंकी रोटी बनाते हजारो लोग सिखते है। कोई अच्छी बनता है, कोई बुरी, कोई कठिन और कोई सबसे उत्तम बनाता है। पानी वे कावेही है, आटाभी वेही है, किन्तु वहा विवेककी विशेषता है। खानेमें, पीनेमें, पहेरनेमें, स्नान करनेमें, बोलनेमें इत्यादि कार्य करनेमें विवेककी आवश्यकता है। धर्मके जो २ कार्य करना वे विवेकदृष्टिसे करना। एक हजार रूपैये धर्मादा खातेमें खर्च करनेवाला द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर वे रूपैयोंसे उत्तम फल प्राप्त हो वैसी प्रवृत्ति करता है। [illegible]

ध्यान रूप जो क्रिया, वे गुरू महाराजके पास न आया होता तो कैसे वन सक्ती ? वास्ते निषेध न करना। क्रिया फलदायक है परन्तु साथ ज्ञानके क्रिया हो तो वे आत्माको हितकारक है। 'यतः ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः' अर्थात् ज्ञान और क्रियासे मोक्षकी प्राप्ति है। प्रथम ज्ञान और उसके बाद क्रिया करना योग्य है।

यत.

ज्ञान बिना व्यवहारको, कहा बनावत नाच ॥
रत्न कहो सो काचकु, अत काच सो काच ॥१॥

तथा श्री अनुयोगद्वारसूत्रमें कहा है किः—

जं अन्नाणि कम्मं खवेइ। बहुआहि वास कोडीहिं॥
तंणाणि तिहि गुत्तो, खवेई उसा समित्तेण ॥१॥

पूर्व कोडी वर्ष पर्यंत तप, जप आदि क्रियासे जो कर्म अज्ञानी नाश कर सक्ता है, वे कर्म ज्ञानी श्वासोश्वासमें क्षय करता है। वास्ते ज्ञानका विशेष आदर करना। विना ज्ञान क्रियामें जो आनंद मानते हैं वे अंधे समान जानना। जैसे–अंधा मनुष्य चाहे वहां जॉय, तोभी पडे, गुडे, और ज्ञानी प्रत्येक वस्तुका स्वरूप ज्ञान करके यथार्थ जाननेसे किसी विषयमें भूल नहीं करता। और प्रमाद दशासे भूल होते भूल समजता है। गीतार्थ गुरुको अकेले विहार करनेका अधिकार है, किन्तु अज्ञानीको विहार करना पडे तो गीतार्थकी आज्ञासे करना।

यत'

पढमो गीयथ्थ विहारो,
बीओ गीयथ्थ निस्सिओ भणिओ ॥
इत्तो तइय विहारो ।
नाणुन्नाओ जिणवरेहिं ॥ १ ॥

इत्यादिसेभी ज्ञानकी मुख्यता सिद्ध होती है। ज्ञानी सयममें रहे तो हजारा कर्मोका क्षय करता है। बिना सयम केवल ज्ञानही विशेष हितकारक नहीं होता ।

यत.

श्री अनुयोगद्वार सूत्रे ।
हय नाण किआ हीण ॥
हया अन्नाणओ किया ।
पासतो पगुलो दट्टो ॥
धाव माणो अधओ ॥ १ ॥
संजोग सिद्धिए फल वयति ।
न एग चकेण रहो पयाइ ।
अधोअ पंगुअ वणे समेच्चा ।
ते सपओत्ता नगर पविठा ॥ २ ॥

इत्यादिकसेभी ज्ञानपूर्वक क्रियामें प्रवृत्ति करना सिद्ध होता है। आश्रवको रोककर सवरमें रमण करना, उसका नाम सयम है। कहा है कि —

आश्रव द्वारने रुंधीए, इद्रिय दंड कपाय ॥
सत्तर भेद संजम कह्यो, साचो मोक्ष उपाय॥१॥

इस सत्तरह भेदसे संयममें प्रवृत्ति करना। वे न बन सके तो श्रावकके व्रत ग्रहण करना, वे भी न बन सके तो देव, गुरू, धर्मकी श्रद्धा करना यह सच्चा मोक्षका [illegible] है। [illegible] स्वभावमें रमण करते चेतनने अनत बार [illegible] और कौन जाने कहातक भटकना पडेगा। [illegible] नहीं है। सासारिक वस्तुओंपरसे मोहमाया उठाकर [illegible] संसारकी असारताका चितवन करना। [illegible] रमण करनेसेही आत्मसाधक महापुरुष [illegible] किया जा सक्ता है। सयम मार्ग ग्रहण करनेवाले मुनीश्वर [illegible] स्थिति पद पाते हैं। जो सयम मार्ग ग्रहण करते हैं उनोंको मुनि कहते हैं। पुण्यकी अनत राशिया इकट्ठी हों, तब मुनिका वेप ग्रहण किया जाता है। वैसे मुनीश्वर [illegible] धारण करते हैं, उत्सर्ग अपवाद मार्गके ज्ञाता हैं, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको जानते हुए [illegible] ग्रहण करते हैं। दश विध यतिधर्ममें तत्पर रहते हैं, [illegible] धारण करते हैं। बावीस परिसह सहन करते हैं, [illegible] उपसर्ग हो तो भी आत्मभावमें रमण करते हैं, और [illegible] चिंतवते हैं कि

छेदन भेदन ताडना, वध बधन ने दाह॥
पुद्गल पुद्गलने करे, तुं छे अमर अगाह ॥१॥
देह गेह भाडा तणो, तेह आपणो नाहि ॥
तुज गृह आतम ज्ञानए, तिणमांहे समाहि ॥२॥
ज्यां लगे तुज इण देहथी छे पुरव सग ॥
त्यां लगे कोडी उपायथी, नवि थाये ते भग ॥३॥
तु अजरामर आतमा, अविचल गुण मणिखाण॥
क्षणभंगुर आ देहथी, तुज कहां पिछाण॥ ४ ॥

" रे जीव साहस आदरो " श्री देवचद्रजीने इस मुताबिक पच भावनाकी सज्झायोंमें मुनिकी दशा वर्णन की है ॥

शत्रु मित्रता सर्वथी, पामी वार अनत ॥
कुण सज्जन दुश्मन किस्यु,काले सहुनो अत॥१॥
आव्यो तु पण एकलो, जाए तु पण एक ॥
तो ए सकल कुटुबथी, प्रीति किसी अविवेक ॥२॥
पर सयोगे बंध छे, पर वियोगथी मोख ॥
पर सयोगने त्यागीने, कर निज आतम पोष ॥३॥
एक आतमा माहरो, नाण दर्शन गुणवत ॥
बाह्ययोग सहु अवर छे, पाम्या वार अनत ॥४॥

बंध अवध ए आतमा, कर्त्ता हर्त्ता एह ॥
एह भोगता अभोगता, स्याद्वाद गुण गेह ॥५॥
तप जप क्रिया खप थकी, अष्ट कर्म न विलाय ॥
ते सहु आतमध्यानथी, क्षिणमे खेरु थाय ॥६ ॥
उपादेय छे आतमा, गावो ध्यावो एह ॥
परम महोदय मुक्तिपद, भोक्ता आतम तेह ॥७॥

फिर शरीरमें रोगादि उत्पन्न होते हैं, तब ऐसा चिंतवना कि:–

व्याधि स्तुदति शरीर, नमाम मूर्त विशुद्ध वोधमयं ॥
अग्नि र्दहति शरीर, न कुटीराकाश मा सक्त ॥१॥

"टीका—व्याधिः शरीर तुदति व्यथयति पीडयति। मा न अमूर्त्त विशुद्ध वोधमय पीडयति अग्नि कुटीर दहति, किंतु कुटीर आसक्त आकाश न दहति ॥ व्याधि शरीरको पीडा करता है किन्तु अमूर्त विशुद्ध वोधमय ऐसे मुझको वे पीडा नहीं कर सक्ता। जैसे–अग्नि झुपडीको जलाता है, परन्तु झुपडीके साथ स्थित आकाशको नहीं जलाता वैसे–मेरे अमूर्त आत्माको पीडा करने व्याधि समर्थ नहीं है।

नैवात्मनो विकार'क्रोधादि' किंतु कर्म संवधात् ॥
स्फटिक मणेरिव रक्तत्व माश्रितात् पुष्पतो रक्तात्॥१॥

" क्रोधादिः आत्मनः विकारः नैव किंतु

कर्मणः संबधात् क्रोधादि विकारः भवेद्,
रक्तात्पुष्पतः आश्रितात् यथा स्फटिक
मणे' रक्तता तथा क्रोधादि ॥ "

क्रोधादिक आत्माके विकार नहीं है किंतु कर्म सबधसे क्रोधादि विकार आत्माके कहलाते हैं। जैसे लाल पुष्पके सयोगसे स्फटिक मणिमें रक्तता मालुम होती है। वैसे क्रोधादि विकारके विषयमें समजना।

बाह्यायामपि विकृतौ, मोही जागर्ति सर्वदात्मेति ॥
किं नोपभुक्तहेमो, हेम ग्रावाण मपि तनुते ॥१॥

" मोही जीव सर्वदा बाह्याया अपि विकृतौ
आत्मा इति विचार्य जागर्त्ति तत्र दृष्टांत माह।
उपभुक्त' हेम धत्तूरभक्षक हेमफलभक्षक
नर ग्रावाण पाषाण अपि हेमं सुवर्णं
किं न मनुते अपितु मनुते ॥"

यह मेरा २ ऐसी बुद्धिसे मोहित जीव धन, धान्य, पुत्र, स्त्री आदि बाह्य विकारी पदार्थोंकोभी अपने मानकर मेरा ऐसी बुद्धिसे मोही जीव सर्वदा जागता है। मेरा ऐसा प्रत्यय बाह्य वस्तुओंमें हमेशा रहा करता है। अत'एव सदा जागता है और परवस्तुकोभी अपनी मानता है। धतूरेके पुष्पका जिस पुरुषने भक्षण किया है, उसको पाषाण (पत्थर) भी सुवर्ण मालुम होता

है। वह समजना जैसे—असत्य है, वैसे—परवस्तु मेरी है ऐसा जो भास होता है, वहभी असत्य जानना।

श्लोक

सति द्वितीये चिंता।
कर्म ततस्तेन वर्तते जन्म॥
एकोऽस्मि सकल चिंता।
रहितोऽस्मि मुमुक्षु रिति नियतं॥ १॥

" टीका—द्वितीये वस्तुनि सति चिता भवेत् ततः चिंतायाः सकाशात् कर्म तेन कर्मणा कृत्वा जन्म ससारः वर्तते इति हेतोः नियतं निश्चित अहं एकोऽस्मि द्रव्यगुणपर्यायवान् सकलचितारहितोऽस्मि अहं मुक्तिवांछकः॥ "

आत्मासे अन्य वस्तुको अपनी मानते चिंता होती है, और वह चितासे कर्मबन्ध होता है, उससे ससारमें वृद्धि होती है। इस लिये मैं अकेला हूँ, द्रव्य, गुण, पर्याय करके युक्त हूँ, सकल चिंतारहित हूँ, मै मुक्तिवाछक हूँ, ऐसी भावना करना।

॥ श्लोक ॥

यादृश्यपि तादृश्यपि परताश्चिंता करोति खलु बंध।
किं ममतया मुमुक्षो परेण किं सर्व देकस्य॥ १॥

॥ "यादृशी अपि तादृशी अपि परतः परस्मात् चिंता खलु इति निश्चित वधं करोति ममतया चितया किं प्रयोजन किमपि कार्यं न एकस्य मम मुमुक्षो॰ परेण वस्तुना किं प्रयोजन किंतु प्रयोजन न॰" ॥

चाहे किसीभी प्रकारकी पर चिंता हो उससे निश्चय करके वध होता है। तो चिंताका निमित्त जो ममता उसका मुझे क्या प्रयोजन है? अवश्य कुछभी नहीं है। मुमुक्षु ऐसा जो मैं उसको ममतासे क्या प्रयोजन है? बिल्कुल नहीं।

श्लोक

चित्तेनकर्मणा त्व वद्धे यदि बद्ध्यते त्वया तदत ॥
प्रतिवदी कृतमात्मन् मोचयति त्वां न सदेह ॥१॥

॥ "भो आत्मन्! चित्तेन मनसा कर्मणा त्व वद्ध अत कारणात् यदि चेत् तत मन त्वया वद्ध्यते तदा भो आत्मन् वदीकृत त्वा मोचयति न सदेह॰ ॥"

अरे आत्मा! तू मनद्वारा कर्मसे बधा जाता है, यदि तू उस मनको बांध ले अर्थात् अपने स्वाधीन करले, उसके सकल्पो विकल्पोंपर विजय प्राप्त करले तो आत्माके उपयोगद्वारा बधा हुआ मन तुझे कर्मसे छुडायगा। यह नि॰सशय है।

श्लोक

स्वपरविभागावगमे जाते सम्यक्परे परित्यक्ते ॥
सहजवोधेकरूपे तिष्ठत्यात्मा स्वयं शुद्ध ॥१॥

॥ "स्वपर विभाग अवगमे भेद ज्ञाने जाते सति परे परवस्तुनि परित्यक्ते सति स्वयं शुद्ध आत्मा सहजेक वोधरूपे तिष्ठति "॥

भली प्रकार स्वपरका बोध होनेसे और जडको अन्य जानकर उसका त्याग करनेमें आवे तो सहज ज्ञान स्वरूप स्वयं शुद्ध आत्मा स्व स्वभावसे दृग्गोचर होता है। स्व स्वभावसे पूर्णानंद, अखड ऐसा आत्मा अपने स्वभावसे स्थिर होता । इस प्रकार भावना भावते मुनि महाराज विचरते हैं, और चरणसित्तरी तथा करणसित्तरीका आराधन करने प्रयत्न करते हैं। यह प्रथम नामक पाउडी धर्म प्रासादमें प्रवेश करने के लिये अन्तिम है। यह पन्दरह पाउडीया केवल वोध होनेके वास्ते यहांपर वताई गई है । यह पदरह पाउडीया धर्म करते आवश्यकीय है। विना ऐसे गुण प्राप्त हुए आत्मसाधक महापुरूप बनना अति कष्टसाध्य है। विना दुर्गुणोंका नाश हुए और गुणोंकी प्राप्ति हुए साधुपना और श्रावकपना प्राप्त नहीं होता । श्रावकने इकीस गुणोंके अंदर भी प्रथम गंभीर गुण धारण करना चाहिये । छिद्र-दुर्गुण देखनेकी तथा साधुके मर्मोका प्रकाश अन्यके सामने प्रकाशित करनेसे अर्थात्

कहनेसे श्रावक अपना प्रथम गुणभी धारण नहीं कर सक्ता । तो फिर मैं श्रावक हूं ऐसा अभिमान धारण करना निरर्थक है। तुच्छ बुद्धिवाला और अन्यके छिद्र औरोंके पास प्रकाश करनेवाला श्रावक श्रावकके बारह व्रत किस प्रकार ग्रहण कर सके ? जब-श्रावकको प्रथम गंभीर गुणकी आवश्यकता है तब मुनीश्वरने तो अवश्य गंभीर होनाही चाहिये । संयम धारण करके आत्माको सिद्ध समान बनाने प्रयत्न करना चाहिये ।

" ॥ तथाच सिद्धप्राभृत टीकायां ॥
जारिस सिद्धसहावो ॥
तारिसो भावो हु ॥
सव्व जीवाणं ॥
तेण सिद्धत्तरुइ ॥ कायव्वा भव्व जीवेहिं॥'

कोई पूछे कि सिद्ध तथा संसारीको समान कैसे कहते हो? उसका उत्तर इस मुताबिक है । जिस पदार्थकी जाति एक है वे कभीभी पलटती नहीं । वास्ते जीव अनादिसे कर्मावर्त हुआ है तथापि पलटे नहीं, और अपनी स्वजाति न छोडे । इस लिये जीव द्रव्यकी सत्तासे शुद्ध गुण पर्यायमयी है । यद्यपि जीव अशुद्ध परिणामी है, और ज्ञानादिक सब गुण कर्मसे छिपे हुए हैं, तदपि सत्ता शुद्ध है । आत्मामें सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभाव रहा है ।

अथ सामान्य स्वभावका स्वरूप ॥

१. द्रव्यके, प्रदेश, गुण और पर्याय उसका समुदाय वे

एक पिंडरूप है; परन्तु भिन्न रूप नहीं वर्तता, उसको एक स्वभाव कहते हैं।

२. दूसरा नित्य अविनाशता, अभगुरता, ध्रुवता, "तद् भावाव्यय नित्य" इति तत्त्वार्थ वचनात् । ये नित्य स्वभाव आत्मामें रहा है। वैसे ही शेष पाच द्रव्योंमें भी रहा है।

३. तृतीय सर्व द्रव्य अपने स्वभावसे हैं, परंतु किसी कालमें अपनी ऋद्धिको छोडते नहीं। ये आस्ति स्वभाव जानना। आत्मामें अनतगुण अनत पर्यायरूप ऋद्धि भरी है, परतु किसी कालमें उसका नाश न होगा। आत्माको कर्म लगे हैं अतःएव आत्माकी ऋद्धि तिरोभाव (प्रच्छन्नपने) से वर्तती है । वास्ते ये आस्ति स्वभाव जानना।

४. भेद स्वभाव वे कार्य गत है, षट् द्रव्यमें भेद स्वभाव रहा है। आत्मामें ज्ञानादिक सर्व गुण अपने अपने कार्यको करते हैं, तथापि एक गुण वे दूसरे गुणके कार्यको नहीं करता। ज्ञान वे ज्ञाता रूप कार्यको करता है, दर्शन गुण दर्शक-देखने रूप कार्यको करता है, तथा चारित्र वे निजगुणमें रमणता और स्थिरता रूप कार्यको करता है। इत्यादिक कार्यके भेदसे आत्म द्रव्यमें और अन्य द्रव्यमें भेद स्वभाव रहा है।

५. अभिलाप्य स्वभाव है, जे वचन कहा जा सके, वाचासे जिसका स्वरूप कहा जाय, वैसेभी आत्मद्रव्यमें अनंत धर्म हैं, वे भावश्रुत ज्ञानद्वारा जाने जा सक्ते हैं। वास्ते श्रुतज्ञानकी शक्ति भी [illegible] ये अभिलाप्य स्वभाव आत्मामें जानना।

६ सर्व द्रव्यमें पर्यायकी परावर्तता कहते अर्थात् पलटनेका स्वभाव रहा है। वे भव्य स्वभाव कहना। यह भव्य स्वभाव आत्मामें रहा है। यह छ स्वभाव द्रव्यमें, गुणमें और पर्यायमें है। वास्ते सामान्य स्वभाव कहना।

अथ विशेप स्वभाव कहते हैं।

१ प्रथम अनेक स्वभाव ने एक एक द्रव्यमें अनंतगुण स्थित हैं। और फिर एक एक गुणमें अनतगुण विभाग है, वे अनेक स्वभावता है।

२ उत्पाद तथा व्यय करके आत्मामें अनित्य स्वभाव रहा है।

३ अपनेसे जो अन्य द्रव्य हैं, उसके धर्म आत्मद्रव्य नहीं है, वे नास्ति स्वभाव जानना।

४ आत्माके सर्व गुण तथा पर्याय वे अलग अलग कार्य करते हैं, परतु क्षेत्र भाजन वे सर्वका आत्मा है। वास्ते गुण तथा पर्यायकी अनतता है, परतु कोई मूल द्रव्यका त्याग नहीं कर सक्ता। एक क्षेत्रमें एक धारण स्वभावता आश्रय कर रही है, वे अभेद स्वभाव है।

५ वस्तु उस स्वरूपसे, केवलज्ञान गम्यतासे, वचनद्वारा अगोचर अनत धर्मात्मरूपनेसे, द्रव्यका अभिलाप्य स्वभाव वे अवक्तव्य स्वभाव है।

६ अनेक पर्यायकी परावर्तना (पलटनेका स्वभाव) है; पदार्थके मूल रूपसे न पलटे अर्थात् उस रूपसेही रहे। यह नियतपना वास्ते आत्मामें अभव्य स्वभाव जानना।

शेष जो पांच द्रव्य है उसमेंभी अभव्य स्वभाव व्यवहार

नयसे जानना । सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभाव छ द्रव्यमें सदाकाल रहा है । सामान्य स्वभाव वे पदार्थका द्रव्यास्तिक मूल धर्म है । जिस समयमें एक, उस समयमें अनेक, जिस समयमें नित्य, उस समयमें अनित्य, जिस समयमें अस्ति उस समयमें नास्ति, जिस समयमें भिन्न, उस समयमें अभिन्न, जिस समयमें वक्तव्य, उसही समयमें अवक्तव्य, जिस समयमें भव्य, उसही समयमें अभव्य, इत्यादिक स्वभाव आत्म द्रव्यमें रहे है । उक्त अनेक स्वभाव आत्मामें वैसेही शेप पाचों द्रव्योंमें रहे है, उनोंकी सप्तभगी करना ।

सप्तभंगीमें—स्यादस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्यम् यह तीन भागे सकल देशी हैं । शेप चार विकल देशी है । स्यात् अस्ति, नास्ति, स्यात् अस्ति अवक्तव्यम्, स्यात् नास्ति अवक्तव्यम्, स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यम्, यह चार भागे पदार्थके अशको अर्थात् पर्यायको ग्रहण करते हैं । उसका भावार्थ यह है कि, प्रथम जो स्यात् अस्ति नास्ति नामा चौथा भग है उसमें अवक्तव्य धर्म न आया । कोई कहेगा कि पद करके अवक्तव्य धर्म ग्रहण करा। इसका उत्तर यह है कि, स्यात् पद वे अस्ति तथा नास्ति ये उभय धर्मका अनेकांतवाच्य ग्राहक है, किन्तु अवक्तव्यका ग्राहक नहीं है । स्यात् अस्ति अवक्तव्यम् यह पचम भग है । इसमें पदार्थका अस्ति धर्म समयी है [illegible] कथन करते [illegible] [illegible]

ख्यात समय लगता है। वास्ते यह अस्तिपना अनेकान्तपने है, परतु वचन गोचर नहीं है।

एव स्यात् नास्ति अवक्तव्यम्, यह छट्ठा भग जानना। तथा स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यम्। यह भागे स्यात् कथन करते, अनेकातपनेसे अस्ति कहते असख्यात समय व्यतीत हो। नास्ति कथन करतेभी असख्यात समय व्यतीत हो। अत एव अवक्तव्य है। इकट्ठे है तथापि जिस प्रकार वस्तुमें मिल जाते है, उसही रीतिसे कथन किये नहीं जा सक्ते। अत.एव यह चारों भगमें सर्व धर्मका ग्रहण नहीं हुआ, इस लिये यह चारों भग विकल्प देशी हैं।

१. आत्मा साप्रत समयमें ज्ञान, दर्शन और चारित्रादि स्वपर्यायकी परिणतिपने अस्ति है, अर्थात् अतीत–भूत कालके पर्याय तो नष्ट हो गये हैं, अनागत–भविष्य कालके पर्याय उत्पन्न होनेवाले है, वास्ते वर्तमान पर्याय ग्रहण किये। यहां परस्यात् ये अव्यय है ये नास्ति अवक्तव्यम् धर्मका अनर्पित द्योतक–बताने वाला है। इस प्रकार स्यात् अस्ति यह प्रथम भग जानना।

२ तथा स्यात् नास्ति–स्यात् कथचित्पने गति, स्थिति, अवगाहोपकारी वर्णादि अचेतनादि परद्रव्य धर्म, तथा स्वत के अनागत पर्याय ये वर्तमान समयमे वर्तनेवाली नहीं है। विना आत्मद्रव्य शेष रहे हुए धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल यह पाच द्रव्यके गुण

पर्यायका आत्मामें नास्ति धर्म रहा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे करके युक्त ऐसे पांच द्रव्यका नास्तिपना आत्म द्रव्यमें है, तथा आत्माके अनत पर्यायोंकाभी सामत एक समयमें नास्तिपना आत्मामें स्थित है। ये नास्ति नामक दुसरा भग द्रव्यको द्रव्य स्वभावसे रखने रूप है, नहीं तो किसी कालमें जीव अजीव स्वभावको प्राप्त हो। यह स्यात् नास्ति नामक दूसरा भग कहा।

३ आत्मामें अपने अनत गुण अस्ति स्वभावसे स्थित हैं। उसका किसी कालमे नाश होने वाला नहीं है। ये गुण आत्मामें अस्तिपने सदाकाल वर्तते है। ऐसेही विना जीव द्रव्यके शेप पाच द्रव्य तथा उसके पर्यायका नास्ति स्वभाव सदाकाल आत्मामें स्थित है। पाच शरीर, सघयण (Body), लेश्या इत्यादिकका नास्ति स्वभावभी आत्म द्रव्यमें स्थित हैं। ये किसी कालम नष्ट न होंगे। अस्ति तथा नास्ति ये उभय धर्म आत्मामें स्थित है।

८. विवक्षित वचन गोचर द्रव्यार्थक मुख्य आत्मधर्मकी अपेक्षासे आस्ति है। वेही आत्मद्रव्य सामान्य तथा विशेप दोनोंका भिन्न प्रवृत्ति धर्म समकालमें अर्थात् एकही समयमें ग्रहण नहीं किया जा सक्ता। इस लिये स्यात् अस्ति अवक्तव्यम् नामक पंचम भग जानना।

६. स्यात् नास्ति अवक्तव्यम् यह पचम भंगवत् जानना।

७ स्यात्-किसी द्रव्यमें अस्ति तथा नास्ति यह उभय धर्म युगपत् समकालीन रहे है। वे वचनद्वारा अगोचर है। वास्ते स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यम् यह सप्तम भंग जानना। यह सप्तभंगीका स्वरूप सांगोपांग आत्म द्रव्यमें कहा है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय तथा कालमेंभी उक्त रीतिसे सप्तभंगीका स्वरूप जानना।

आत्मामें छ कारक जानना वे इस प्रकार है ॥

१ कर्त्ता नाम कारकको कहते है। आत्मद्रव्य आत्म शुद्धता प्राप्त करनेके लिये कार्य प्रवर्त (शुरु) हुआ, अपना कर्त्ता है।

२ आत्मा अपनी सिद्धता, सर्व गुण पूर्णता, सर्व स्वभाव स्वरूपावस्थानता, ये कार्य नामक दूसरा कारक जानना। ये कार्य जो परिणति चक्रको प्रवर्तीने रूप क्रियाए उत्पन्न करनेके समयमें है। उत्पन्न भये बाद कार्यमें कारकता नही है।

३ उपादान परिणाम आत्मा स्वगुणकी परिणति सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप रत्नत्रयीकी जो परिणति, तत्वनिरधार तत्वरुचि, तत्वमें रमणतादिकरूप स्वगुण अहिंसकता, पत्र हेतु अपरिणमनरूप स्वरूप, यथार्थ भासनरूप परभाव तथा अग्रहण रूप परत्याग, अभोक्तारूप स्वरूप ग्रहण स्वरूप भोगी, स्वरूप

एवत्स्वरूप तत्वाराधन चेतना स्वरूप, प्रगटतानुयायी वीर्य, उसका उपादान कारण और द्रव्ययोग स्वरूप अरिहंतादिक अवलंबनादि, यथार्थ आगम श्रवणादि वे निमित्त कारण, उसका प्रयोजन, आत्मकार्य करनेपना, आत्माका प्रयोग करना, यह उत्कृष्ट कारणके लिये यह करण नामक तृतीय कारक जानना । इसको शुद्ध दैव प्रमुख करण कारक कहना ।

४. आत्माकी संपदा ज्ञान, दर्शन और चारित्र इनोके पर्यायसे उसका दान आत्माको आत्मगुण प्रगट करने देना, उससे जो २ आत्म धर्म उत्पन्न होते जाँय, वे संप्रदान नामक चतुर्थ कारक कहना ।

५ जिस आत्मामें स्थित जो धर्म उसको स्वधर्म कहना, और उससे विपरीत जो मोहादिक कर्म अर्थात् अशुद्ध प्रवृत्ति, वे परभाव कहना, उसका विवेचन करना, भिन्न करना, अशुद्धताका उच्छेद करना, दोषका त्याग करना, अनादि संसार कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वका त्याग करके आत्म स्वरूपका कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वपना प्रगट करना ये पंचम अपादान कारक जानना ।

६ सर्व पर्याय उसका आधार आत्मा है । आत्मा तथा आत्म पर्यायका स्वस्वामीत्व संबंध है, व्याप्य व्यापक संबंध है, ग्राह्य ग्राहक संबंध है, आधाराधेय संबंध है यह सबका स्थानरूप क्षेत्र आत्मा है । इस लिये आत्मा आधार है । यह आधार नामक छट्ठा कारक कहा । यह ६ कारकोंका उन्नीसवें तीर्थंकर श्रीमल्लिनाथजीके

स्तवन म श्री देवचद्रजीने वर्णन किया है । और प्रसगोपात यहां लिखा है ।

जहातक कर्त्ता परभाव कारक है, वहां तक कुछ साधकता नहीं है । आत्मतत्व कर्त्ता बने विना सब शुभ चाल चलन वे बालककी चाल है । अत एव कारकचक्रके बाधकताको निवारण करके साधकताका अवलबन करना । वे कारकचक्रको सभालना, स्वरूपानुयायि करना, और अपने आत्माको कहनाकि, हे चेतन ! तू परभावका कर्त्ता तथा भोक्ता नहीं है, तू तो सपूर्णानद और शुद्ध विलासी है । तू परभावमें रमण कर रहा है, तथा दुरभावका भोगी हुआ, यह तुझे योग्य नहीं है । तेरा कार्य अनत गुना परिणामिक रूप भोक्ताका है । वास्ते हे आत्मा ! तू यथार्थ जिनवाणी रूप अमृतका पान कर । अनादि विभावरूप विषको निवारण करके सच्चिदानद स्वरूपमें रमण कर । प्रथम शुद्धता निष्पन्न–सहित आत्माके ज्ञानादिक पर्यायका ज्ञाता, तथा दर्शक रूप कार्यका प्रवर्तन, उत्पाद, व्यय रूप परिणमन, उस कार्यका कर्त्ता आत्मा है । दूसरा आत्म गुणका परिणमन व कार्य, तीसरा आत्मगुण ज्ञानादिक वे कारण, चौथा आत्मगुणका लाभ तथा सप्रदान, पचम परभाव त्याग परिणति वे अपादान, छट्ठा अनतगुणका रक्षण करना वे आधार यह छ कारकका चक्र वे सिद्धावस्थामें सदाकाल स्वाधीन हो कर फिर रहा है । यह छ कारक समज कर आत्माके स्व

रूपका ध्यान करना। परभावका त्याग करना और मनमें विचारनाकि:—

अहम्मिको खलुसुद्धो निम्ममो नाणदसण समत्तो तम्मिठिओ तश्चित्तो सव्वे एए खयनेमि ॥ १ ॥

भावार्थः—अह–मैं आत्मा अनंत गुण पर्याय रूप, अनंत स्वधर्ममय तथा समुदायपनेसे एक हूँ। फिर निश्चय नयसे देखते मैं शुद्ध हूँ, जैसे–सिद्ध परमात्मा स्वस्वरूपसे करके शुद्ध है, एवं मैं स्वसत्तासे शुद्ध सिद्ध समान हूँ। ममता रहित हूँ, पर वस्तु मेरी नहीं है, मैं उसका नहीं हूँ, मेरे और उसके सयोग सबंध है, मेरा स्वरूप भिन्न है। वे पुद्गलका स्वरूप अलग है। तो उसकी ममत मुझे कहासे हो? विशेष उपयोग और सामान्य उपयोग स्वरूप जो ज्ञान, दर्शन तन्मय मैं हूँ। वैसा जो मेरा स्वरूप, उसमें स्थित हूँ; तथापि तत् स्वरूपमय बना हूँ। अन्य सर्व उपाधियोंका क्षय करु. मैंने किस सबबसे अन्य विपत्ति–उपाधिमें रमण करना चाहिये? अवश्य न करना चाहिये।

आत्म साधनके लिये अपनी परिणति वे उपादान कारण है, यहभी वे निमित्त कारणके आधीन है। निमित्तका सेवन करते, उपादान कारण स्मरण करे। अरिहत परमात्मा मोक्षरूप कार्यके पुष्ट निमित्त कारण है। 'यत' कार्यस्य आसन्ननिमित्त इति तदेव पुष्टं'॥

अत.एव अरिहत भगवानकी पूजा, भक्ति—स्तवना अति पुष्ट निमित्त कारण वास्ते मुक्ति के है। उस निमित्त कारणका वार २ अवलम्बन करनाकि जिससे अन्तमें शाश्वत पदके भोगी होवें। तथा परभाव दशा टल जाय। परमात्मा असंख्यात प्रदेशके स्वामी है। छ द्रव्यममे जीव द्रव्य अपना है। धर्मास्तिकाय असख्यात प्रदेशी है, लोकाकाश प्रमाण है। अरूपी, अक्रिय और अचल है, अचेतन है, तथा जीव और पुद्गलको गति करनेमें अर्थात् उसको चलनेमें सहाय करता है, वे धर्मास्तिकाय द्रव्य जानना। अधर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशी, लोक प्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय और स्थिति परिणामि अधर्मास्तिकाय है। अनत प्रदेशी, लोकालोक प्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अन्य द्रव्यको अवगाहन अवकाशका हेतु वे आकाशास्तिकाय है। पुद्गल परमाणु अनन, रूपी, अचेतन, अक्रिय और पूर्णगलन धर्ममयी वर्ण, गध, रस, स्पर्शयुक्त एक २ परमाणु ऐसे अनत परमाणु वे सर्व लोकमें जानना, परतु लोक के बाहर अर्थात् अलोक में पुद्गल द्रव्य नहीं है। ये पुद्गलास्तिकाय द्रव्य जानना।

चेतना लक्षण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, उपयोग यह लक्षण तथा अरूपी स्वभावका कर्त्ता, असख्यात प्रदेशी ऐसा एक जीवद्रव्य, और वैसे अनत जीव द्रव्य वे जीवास्तिकाय कहना। छठवा अप्रदेशी, अरूपी वर्तना लक्षणरूप कालद्रव्य जानना। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और

काल यह चार द्रव्य अपरिणामी हैं। किसीसे मिलते जुलते नहीं। जीव और पुद्गल यह उभय द्रव्य परिणामी हैं। अर्थात् परस्पर क्षीर नीरवत् मिले हुए हैं। पुद्गलद्रव्य परस्पर खंधपना प्राप्त करे और परानुयायि हेतुपन परिणाम किया हुआ जो जीवद्रव्य, उसके प्रदेशमें कर्मरूप होकर लिपट जाता है। एक जीवसे दूसरा जीव न मिले, परन्तु पुद्गल तो ससारी जीवसे मिलता है। श्री सिद्ध परमेश्वर पुद्गलात्मक कर्मसे रहित हुए हैं। उनोंका स्पर्श पुद्गल न कर सके। मैं ससारी पुद्गलमें विषय मदोन्मत्त होकर कर्मको ग्रहण करता हूँ। मैं सिद्ध परमात्माका सजातीय हूँ। प्रभूतासे करके उनोंके समान हूँ, परन्तु मेरे गुण कर्मकी वर्गणाओंके योगसे सत्तामे तिरोभावसे अस्तिपने है, उस का कदापि काल्मे नाश होनेवाला नहीं है। यद्यपि मैं संसारी हूँ, और शुद्ध परिणतिके योगसे कर्मको स्व स्वभावकी बुद्धिसे ग्रहण करता हूँ, परन्तु निश्चित मैं मेरे शुद्ध परिणतिको भोगने वाला अरु अक्षय होकर शुद्ध चैतन्य स्वरूप रहूंगा। जैसा–

क्षेत्रके आप अधिपति–स्वामी आप हुए हो। आत्माके एकेर प्रदेशमें ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रादिकरूप अनंत लक्ष्मी अशुद्ध परिणतिके योगसे तिरोभावसे, वे अनंत लक्ष्मी स्वस्वभावमें रमण कर हे प्रभो! आपने आविर्भाव रूप–प्रगट प्रत्यक्ष करके उसके स्वामी बने। अनंत गुण तथा अनंतपर्यायोंके स्वामी हे प्रभो! आप हुए। मेरेमें यह सब लक्ष्मी तिरोभाव–परोक्षभावसे बनेनी है। और कर्मके जोरसे क्षणभर भी शुद्धात्माके स्वरूपमें लक्ष्य, देता नहीं। लकडेकी धावमाता धावको जिस प्रकार छोटा बालक अपनी सची माताकी बुद्धिसे स्तनपान करके राजी होता है, परन्तु उसमें किंचित्भी सत्यता नहीं है। वैसे हे प्रभो! मैं पुद्गलमें सुखकी बुद्धि रखकर, और आत्माके सुखको असत्य मानता हुआ, दिवानेकी तरह विवेक दृष्टि रहित होकर संसारमें भटकता हू। आत्मा स्वपर प्रकाशक दिनमणी समान अर्थात् सूर्य है। जैसे–दीपक स्व और पर प्रकाशक है वैसे–आत्माभी अपने अनंत गुणोंका और अन्य द्रव्योंकाभी ज्ञानद्वारा प्रकाश करता है। आत्म द्रव्यमें परद्रव्यका अस्तित्व नास्तिपनेसे है। और परद्रव्य निष्ठ नास्तिपना आत्म द्रव्यमें अस्तिपने स्थित रहा है। आत्म द्रव्यका स्वक्षेत्र, स्वद्रव्य, स्वकाल और स्वभावरूपसे रहा हुआ अस्तित्व, धर्मास्तिकायादिक परद्रव्यमें नास्तिरूपसे रहा हुआ है। अनादिकालसे मिथ्या दृष्टि जीवको शरीर, इन्द्रिय, विषय–कषाय रूप कार्य करते अनंतकाल व्यतीत हो

गया। जब-सदगुरू संयोगसे सम्यग् दृष्टि गुण प्रगट हुआ, तब-ज्ञान, दर्शन, चारित्र व कार्यको अपना कार्य जाना है।

यह बात समजकर बादमें उस पदकी सिद्धिके लिये श्रमण-साधुधर्म तथा श्रावकधर्म अंगीकार कर स्वात्महित करने लगा। अन्तमें साध्य दृष्टिसे साध्यकी सिद्धि होती है। आत्माके अनन्त गुण स्वस्वभावमें रमण करते हुए भाव प्रगट होता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमूर्त्तता, अगुरूलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्त्ता, भोक्ता परिणामिकता, अचल, अविनाशी, अखंड, अनत, अजोग, अज, अनाश्रयी, अशरीरी, अणाहारी (आहार रहित), अयोगी, अभोगी, अलेशी, अवेदी, अकषायी, असंख्यात प्रदेशी, अक्रिय, नित्य, अनित्य, सत्, असत्, भेद, अभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व, सामान्य और विशेष इत्यादिक अनत गुण पर्यायरूप धर्मका स्वामी आत्मा है। शरीरमें स्थित है; तथापि पुद्गलसे पृथक है। अशुद्ध परिणतिके योगसे आत्मा परभावका कर्ता तथा भोक्ता और शुद्ध परिणतिके योगसे आत्मा स्वस्वभावका कर्ता और भोक्ता जानना। स्वभाव कर्ताके योगसे परभावका नास्तित्व जानना। परभाव कर्ता योगसे स्वभाव कर्त्ता पनेकी आविर्भाव रूपसे नास्तित्व है, और तिरोभावरूपसे अस्ति स्वभाव कर्त्तापनेका है।

अतरात्माको सर्वथा शुद्धि आत्माके तिरोभावसे है। परमात्माकी सब शुद्धियां प्रगटपने है। आत्माके तीन प्रकार हैं।

एक बहिरात्मा दूसरा अंतरात्मा और तीसरा परमात्मा है।

शरीरादिकको आत्मा गिने, और शरीरादिक आत्मा अलग नहीं है। ऐसी जिसकी बुद्धि है वे बहिरात्मा जानना।

आत्मा असंख्यात प्रदेशी, चेतना युक्त, ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय सहित, अरूपी, शरीरकी अपेक्षासे रूपी, सहज-किंचित् अकृत्रिम, शरीर संयोगी कृत्रिम, अत एव कर्म संयोगसे शरीरादिकमें रहा हुआ है, परन्तु उससे भिन्न है। ऐसा भेद ज्ञानवंत, समकित गुण स्थानकसे लेकर यावत् क्षीण मोह चरम समय पर्यंत अंतरात्मा जानना।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय यह चार घातिक कर्म नष्ट हुए हैं जिसके, तथा सयोगि केवली और अयोगी केवली वैसेही अष्टकर्मसे मुक्त सिद्धात्मा वे सब परमात्मा जानना।

बहिरात्माके दो भेद है। एक भव्य जीव और दूसरा अभव्य जीव। उसमें अभव्य जीव वे कदापि मुक्ति जानेवाला नहीं है। बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। आगममेंभी कहा है कि –

सदसदविसेसणाओ।
भावहेउ जहाच्छिओवलभाओ॥
नाणफलाभावाओ।
मिच्छादिठिस्स अन्नाण॥ १॥

भावार्थः—ज्ञानरूप फलके अभावसे मिथ्यादृष्टिका ज्ञान वे अज्ञानरूप है, वास्ते मिथ्यादृष्टिने ग्रहण किये हुए बारह अंगभी उसका मिथ्या श्रुतरूपसे परिणमन होते हैं । सम्यग् दृष्टिने ग्रहण किया हुआ मिथ्या श्रुतभी सम्यक्त्व श्रुत रूप होता है । कितनेक मिथ्यादृष्टि ऐसे होते हैं कि वे आत्मा क्या है ? उसकोभी नहीं पहिचानते । कितनेक आत्मतत्त्वका स्वीकार करते हैं; परन्तु एकांत पक्षमे आत्माको नित्यही मानते हैं, अथवा एकान्तसे अनित्यभी मान लेते हैं । यदि आत्माको एकांतसे नित्य माननेमें आवे तो सुख दुःखका उपभोग प्राप्त नहीं होता । सबबकि, जिना विनाश उत्पन्न न होना और जो एक स्थिर स्वभावता, वे नित्यका लक्षण है । अतःएव जब—आत्मा सुखका अनुभव कर अपने कारणोंके समूहकी सामग्रीके वशमें होकर दुःख पाता है, तब—स्वभाव भेदसे अनित्यता स्वरूपकी आपत्ति आनेसे स्थिर—एक रूपताका हानि प्रसंग आता है । इसही प्रकार दुःखका अनुभव कर सुखका अनुभव करते भी होता है । ऐसा समज लेना चाहिये ।

फिर एकान्त अनित्यवादमें पाप और पुण्यभी नहीं घट सक्ते । क्यों कि उनोंकी अर्थ क्रिया सुख दुःखका उपभोग है । फिर जो अनित्य है वेतो क्षण मात्र रहनेवाला है । और उस क्षणमें केवल उत्पत्तिमेंही व्यग्र होनेसे उसको पुण्य तथा पापका उपादान रूप क्रियाका प्राप्त करना कहांसे हो ? फिर पुण्य,

पापके उपादानरूप कारणका अभाव हुआ; तब विना मूलके पुण्य पाप कहासे हो ? और बध मोक्षका भी असभव है। जो बधा जाता है वे छूटना भी है। आत्माको आनत्य मानने एका न्तपने बध मोक्षभी नही घट सक्ते। आत्माको नित्यानित्य मानने सब घट सकता है। उसका विशेष अधिकार—वर्णन न्यायके ग्रथोंसे वाचकर या सद्गुरुद्वारा सुनकर स्पष्टीकरण करवा लेना। आत्म स्वरूप भेदाभेद है, उसका भेदाभेद गीतार्थ गुरू स-मुख विनय पूर्वक समजना। सारमें सार यही है कि आत्मा स्याद्वाद-वाद* समजकर सत्य तत्व अगीकार कर, कर्मक्षय करना, और शाश्वत मोक्ष सुख प्राप्त करे येही है। और उसके लिये यह उद्यम किया है। हे भव्यजीवों ! यह ग्रथ वाचकर सार तत्व ग्रहण करके आप स्वभावमें रमणकर परमात्म पद प्राप्त करो। येही हितकाक्षा।

सज्जन दोषोंका त्यागकर गुणोंका ग्रहण करते हैं। मै अल्पज्ञ-हूँ, अत एव जो कुछ जिनाज्ञा विरूद्ध लिखा गया हो क्षमा चाहता हूँ। "शुभे यथाशक्ति यतनीयम्" अर्थात् शुभ कार्यमें यथाशक्ति प्रयत्न करना इस न्यायको अनुसरके इस ग्रथकी रचना की है।

श्री शान्ति श्री शान्ति श्री शान्ति श्री शान्ति

---

* स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकम् तत स्याद्वादोनेकान्तवाद "सिद्धहेम"

॥ प्रशस्तिः ॥

तीर्थंकरश्चतुर्विंशो महावीरजिनेश्वर. ॥
परंपरागते ख्याते, तत्पट्टे हीरसूरिराट् ॥ १ ॥
सहजसागरस्तस्य, शिष्योऽभूद्वाचकोत्तम. ॥
तच्छिष्यो व्रतिनां मुख्यो, वाचको जयसागरः॥२॥
परम्परागते पट्टे, सवेगोद्धारकाग्रणी ॥
शान्त दान्त गुणोपेतो, मुनि.श्री नेमसागरः॥३॥
महाप्रतापपाथोधि सच्चारित्र प्ररूपकः ॥
भारते सूर्यसकाशः पूज्य. सर्वेषु साधुषु ॥ ४ ॥
वरप्रदान सिद्ध्यादि, चमत्कारनिधिर्मुनि. ॥
तत्पट्टेषु प्रसिद्धःश्री रविसागरयोगिराट् ॥ ५ ॥
सप्ताधिके स एकोन, विंशतिशतवत्सरे ॥
मार्गशीर्षैकादश्या, दीक्षां शुक्ले मुनिर्दधौ ॥६॥
अग्निभूतनिधानैनवत्सरे ज्येष्ठकृष्णगे ॥
एकादशीदिने प्रात. सिद्धियोगे दिवंगत ॥७॥
तत्पट्टे साधुवर्योसौ, निर्मलव्रत धारकः ॥
लोक पूज्यतमः प्रातःस्मरणीयगणावलिः ॥ ८ ॥

यथार्थनामाक्षान्त्यब्धिर्गुरु· श्रीसुखसागर ॥
वर्त्तते जयमातन्वन्, साम्रत भूमिमंडले ॥ ९ ।
बुद्धिसागरनामासौ, तच्छिष्यो निर्ममे शुभम् ।
सुसिद्धान्तानुसारेण, ग्रन्थ भव्य शिवप्रदम् ॥१०
जना सर्वे सुख यान्तु, सन्तु शुद्धात्ममन्मुखा
सर्वपापानि नश्यन्तु,शान्ति सर्वत्र वर्त्तताम्॥११
यावद्भूमण्डल मेरुर्यावत् सूर्यनिशाकरौ ॥
तावद्ग्रन्थ सुभव्यानांहितायैव भवत्वयम्॥१२
खकायनिधि चन्द्रेऽब्दे, मकरार्कयुतेशुभे ॥
ग्रन्थस्सपूर्णताजाता, विद्यापुर्यां शुभावहा ॥ १३